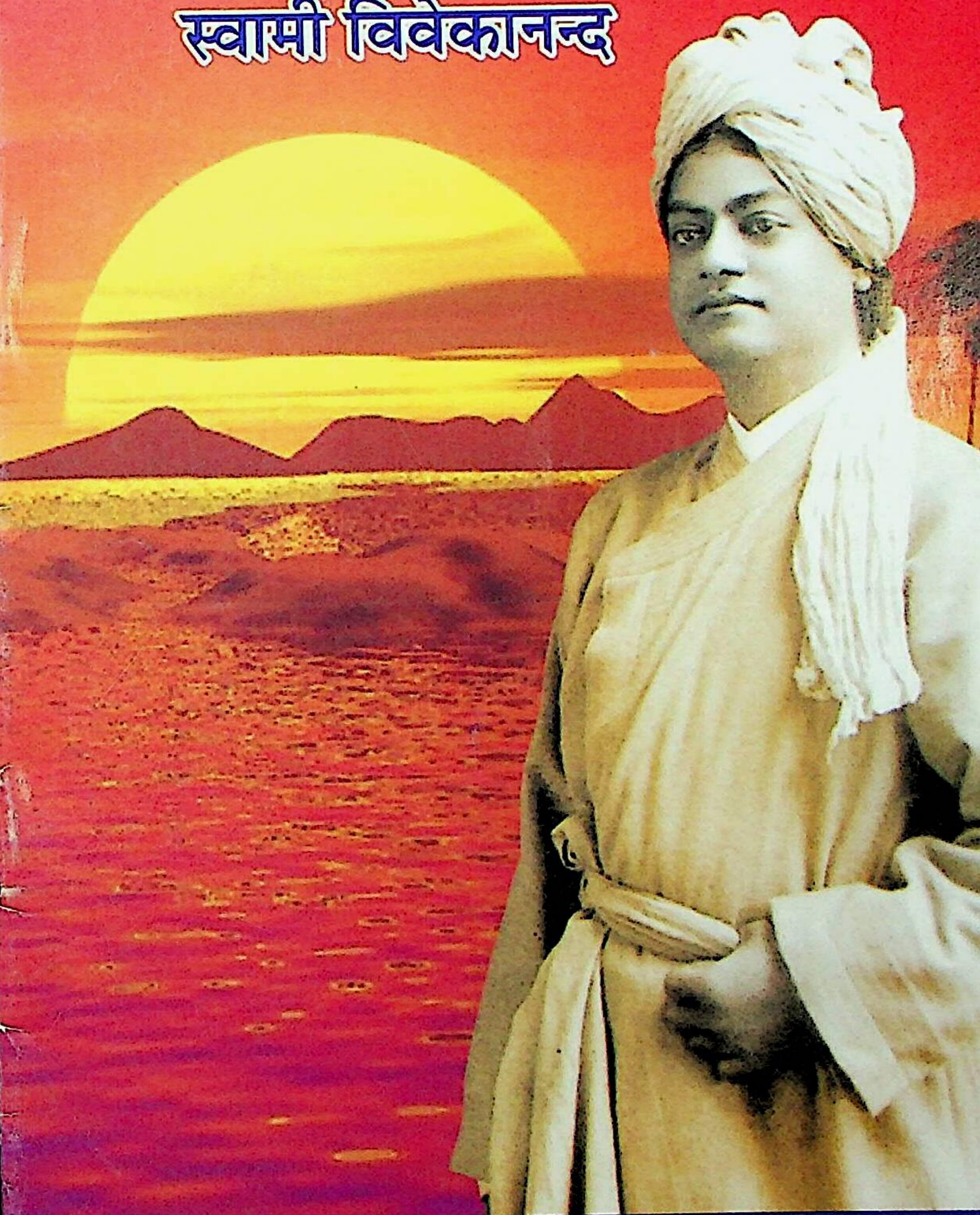
9.2

प्रेरणा पुरुष

स्वामी विवेकानन्द



अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्

प्रेरणा पुरुष

स्वामी विवेकानन्द





संकलन

अंकुश त्रिपाठी



अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, उ. प्र.



पुस्तक : प्रेरणा पुरुष – स्वामी विवेकानन्द

संकलन : अंकुश त्रिपाठी

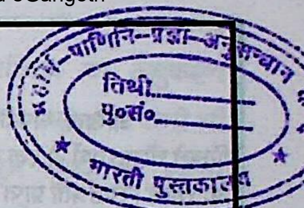
प्रकाशक : अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्
5, नवीन मार्केट, छात्र शक्ति भवन,
केसरबाग, लखनऊ

संस्करण : फरवरी 2013

प्रतियाँ : 2500

सहयोग राशि : ₹ 8/– (आठ रुपये)

मुद्रण व्यवस्था : प्रिण्ट पॉइण्ट, आगरा



भूमिका

यह वर्ष युगपुरुष स्वामी विवेकानंद के 150 वीं वर्षगांठ के रूप में पूरे देश में मनायी जा रही है। जिसमें मुझे भी अपना अभिन्न योगदान देने का अवसर इस रूप में मिला। इस अनूठी पुष्पांजलि के लिए अभाविप के उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड के संगठन मंत्री श्री धर्मपाल सिंह जी ने ही उत्प्रेरक का कार्य किया। उनकी ही प्रेरणा से "प्रेरणा पुरुष – स्वामी विवेकानंद" के लेखन का मार्ग प्रशस्त हुआ। साथ ही मुझे स्वामी जी के बारे में अध्ययन का भी अवसर प्राप्त हुआ, जो अवश्य ही आगे मेरे काम आएगा। खासकर उनकी हर विषय या मत के विषय में उनकी सकारात्मक सोच।

बिना किसी का विरोध किए अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने और उसको स्थापित करने की बात स्वामी जी से ही सीखी जा सकती है। इस पुस्तिका के लेखन में सहक्षेत्रीय संगठनमंत्री श्री मनोजकांत जी का भी पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है। संदर्भो के संकलन में उन्होंने मेरी पूरी सहायता की। इस प्रकार के लेखन का यह मेरा पहला अनुभव है, सो पुस्तिका के लेखन में हो सकता है त्रुटियाँ भी हों। साथ ही अखबार में कुछ दिन कांम करने के अनुभव के कारण बहुत से अखबारी शब्द भी इसमें शामिल हो गए होंगे जिनकी यहाँ आवश्यकता न रही हो।

स्वामी जी के विषय़ में बहुतेरे साहित्य उपस्थित हैं जिनकी उत्कृष्टता के आगे मेरा प्रयास कहीं नहीं टिकता है। फिर भी मैं संतोष प्रकट कर सकता हूँ कि सार्द्ध शती के अवसर पर माँ शारदे ने स्वामी जी के लिए मेरी भी पुष्पांजलि स्वीकार की। इसके साथ ही सभी से अपेक्षा भी है कि पुस्तिका की त्रुटियों को मानवीय और नौसिखिए का प्रयास मानकर मेरा उत्साहवर्धन भी करेंगे।

धन्यवाद!

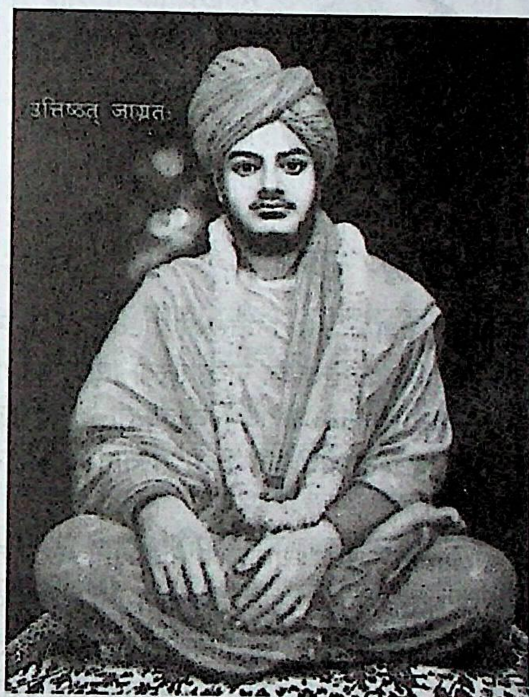
भवदीय

अंकुश त्रिपाठी

प्राक्कथन

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् विश्व का सबसे बड़ा छात्र संगठन है, जो पिछले चौंसठ वर्षो से एक सुविचारित ध्येय को लेकर शिक्षा के क्षेत्र में लगातार काम करता आ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् जिन लोगों के मन में इस प्रकार के छात्र संगठन की स्थापना का विचार उदय हुआ, वे अपने ज्ञान और अनुभव के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि हमारे देश के शिक्षित युवकों में प्रतिभा और परिश्रम करने की क्षमता तुलनात्मक दृष्टि से अधिक मात्रा में विद्यमान है परन्तु सैंकड़ों साल की पराधीनता के प्रभाव से उनके हृदय में राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम की भावना का ह्रास हो गया है। यदि किसी प्रकार से उनके हृदय में देश प्रेम की भावना का संचार कर दिया जाय तो स्वतंत्र भारत की बदली हुई परिस्थितियों और आवश्यकताओं को देखते हुए राष्ट्र के पुनर्निर्माण में उनकी क्षमताओं का समुचित उपयोग हो सकता है। देश भक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिए प्रेरणा कहाँ से ग्रहण की जाए – इसका विचार करने पर ध्यान में आया कि स्वतंत्रता पूर्व युग की विषम परिस्थितायों में जिन महापुरुषों ने अपने देश को प्रगति पथ पर आगे ले जाने अथवा विश्व समुदाय के समक्ष अपने राष्ट्र के गौरव को स्थापित करने में अपने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर दिया, यदि उनके जीवन के प्रेरक प्रसंगों तथा उनके विचारों से युवा पीढ़ी को अवगत कराया जाय तो उसके अन्त:करण में भी अपने देश के लिए कुछ कर गुजरने का हौसला पैदा हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर विद्यार्थी परिषद् ने स्वामी विवेकानन्द को अपने प्रेरणा पुरुष के रूप में स्वीकार किया और उनके जन्म दिवस 12 जनवरी को 'युवा दिवस' के रूप में अपने तीन अनिवार्य राष्ट्रीय कार्यक्रमों में स्थान दिया। इस वर्ष 12 जनवरी को स्वामी विवेकानन्द के जन्म को 150 वर्ष पूरे हुए हैं। इसलिए विद्यार्थी परिषद् ने निश्चय किया है कि 12 जनवरी, 2013 से 12 जनवरी, 2014 के मध्य विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द के संदेशों को अधिक से अधिक छात्रों तक पहुँचाया जायेगा। इस कार्य को सरल बनाने के लिए विद्यार्थी परिषद् के युवा एवं उत्साही कार्यकर्त्ता श्री अंकुश त्रिपाठी ने विवेकानन्द के जीवन एवं संदेशों को आत्मसात करने वाली यह छोटी सी पुस्तिका तैयार की है। पुस्तक में विद्यार्थियों के स्तर एवं सुविधा को ध्यान में रखकर अत्यन्त सरल भाषा में स्वामी जी के विषय में जानने योग्य सभी प्रमुख विषयों का समावेश किया है। हमें विश्वास है कि छात्र समुदाय में इस पुस्तक का स्वागत होगा और छात्रों को स्वामी जी के जीवन एवं संदेशों से देशभक्ति की प्रेरणा प्राप्त होगी। मैं श्री अंकुश त्रिपाठी के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ और उनसे अपेक्षा करता हूँ कि भविष्य में भी वे विद्यार्थी परिषद् के कार्यों में इसी प्रकार अपना योगदान देते रहेंगे।

(डॉ. ओंकारनाथ त्रिपाठी)
हिन्दी विभागाध्यक्ष
बी.एन.के.बी. महाविद्यालय,
अकबरपुर, अम्बेडकर नगर
विशेष आमंत्रित सदस्य, अभाविप



पश्चिम का अनुकरण मत करो, जब कभी भी तुम दूसरे की प्रभुता स्वीकार करोगे, तभी तुम अपनी स्वाधीनता खो बैठोगे और धीरे-धीरे तुम्हारी चिंतन-प्रतिभा भी समाप्त हो जायेगी। आत्मविश्वासी बनो! अपने पूर्वजों पर गर्व करो!! अपने पुरुषार्थ से आंतरिक शक्तियों को विकसित करो।

–स्वामी विवेकानन्द

क्रम



जीवन वृत्त

अंग्रेजी दासता से जकड़े देश में जन्म लेकर पूरे पश्चिम को अपने पीछे घुमाने वाले अनूठे संन्यासी विवेकानन्द का जन्म ईस्वी 1863 की 12 जनवरी को सुबह 6 बजे, मकर संक्रांति के दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध अधिवक्ता विश्वनाथदत्त और भुवनेश्वरीदेवी की प्रथम सन्तान के रूप में हुआ।

पिता विश्वनाथदत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अटार्नी–एट–ला के पद पर कार्यरत थे। वहीं माता भुवनेश्वरीदेवी कुशल और धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। माता–पिता दोनों ही खुले विचारों वाले थे। पिता सभी धर्मो और सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखते थे। माता वैदिक दर्शन और मान्यताओं को लेकर पिता की अपेक्षा ज्यादा दृढ़ थीं। जिसका गहरा प्रभाव नरेन्द्र के जीवन पर पड़ा। माँ के प्रभाव में आने के कारण वह धार्मिक महत्व की बातें, वेदों का अभ्यास, रामायण, महाभारत सहित अन्य प्रसंगों को अत्यन्त लगन के साथ सुनता भी था। किसी भी समस्या का संतोषजनक हल ढूँढने की आदत के कारण नरेन्द्र समूह के बच्चों से अलग था। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण ही सहज ही वह दल का नेतृत्वकर्त्ता भी बन गया। कथाओं कहानियों को सुनने के साथ ही वह माँ से इसका मर्म भी जानने की कोशिश करता था। इसके साथ ही इससे जुड़े विषयों पर तर्क भी करता था।

पिता की ही तरह वह घर में आए किसी भिक्षुक और संन्यासी को खाली हाथ वापस नहीं लौटने देता था। एक बार कमरे में बंद होने के बावजूद अपने वस्त्रों सहित घर में रखी कुछ वस्तुओं को नरेन्द्र ने खिड़की से ही संन्यासियों को दान में दे दिया। नरेन्द्र की इन आदतों के कारण कई बार परिवार वाले भी परेशान हो उठते थे। गरीबों के प्रति करूणा–दया और

संन्यासियों को देखकर उनके प्रति आकर्षण का भाव नरेन्द्र के मन में बचपन से ही घर कर गया था।

बालपन में ही नरेन्द्र के मन में जातिगत भेदभाव के प्रति विरोध का भाव भी था। उसी के विरोध में उसने घर में रखे विभिन्न जातियों के हुक्कों को बारी–बारी पिया। उस समय जातिगत आधार पर विभेद काफी प्रचलित था। इस तरह से अन्य कई प्रसंगों में की वह इस विभेद का प्रतिकार करते दिखे।

वह बचपन से ही कुशल ध्यान योगी भी थे। उनके यही गुण उन्हें विशेष बनाते हैं। ध्यान की मुद्रा में वह इतने मग्न हो जाते थे कि उन्हें कुछ भी होश नहीं रहता था, इससे जुड़े कई उदाहरण और प्रसंग उनके जीवन में बचपन से ही देखने को मिलते हैं।

स्कूली शिक्षा के दौरान शिक्षकों के कठोर शब्दों पर वह कुपित होते थे और उनका प्रतिकार करते थे। मार–पीट कर सिखाने की स्कूली प्रक्रिया का वह विरोध करते थे। इस कारण कभी–कभी उन्हें प्रताड़ना भी झेलनी पड़ती थी। परिवार के लोग और शिक्षकगण उनकी इन चेष्टाओं से भी परेशान होते थे। वह कहते थे कि यह कठोर शासन से नियंत्रित होने वाला नहीं है। वह उसे मधुरवाणी से शांत कराने का प्रयास करते थे।

छोटी सी ही उम्र में नरेन्द्र ने कई साहित्यिक ग्रंथों और धार्मिक महत्व की पुस्तकों का गंभीर अध्ययन कर लिया था। उनके तर्कों को सुनकर पिता विश्वनाथ दत्त और उनके मित्र और सहयोगी भी आश्चर्य प्रकट करते थे। पिता ने पुत्र पर कभी कोई दबाव नहीं डाला। वह बार–बार नरेन्द्र को विभिन्न विषयों पर मत प्रकट करने का अवसर देते थे। नरेन्द्र की असाधारण तर्क शक्ति के आगे लोग झुंझला तक जाते थे। जब नरेन्द्र की युक्तिपूर्ण बात को कोई दबाने का प्रयास करता, तो वह उस पर कुपित हो जाते थे। उस समय नरेन्द्र के मन में छोटे–बड़े का ख्याल भी न रहता था। वह अपने पिता और उनके मित्रों की भी अपने तर्कों से समालोचना कर देते थे। इसके पीछे उसका किसी का अपमानित करने का उद्देश्य नहीं होता। जिस कारण उसे कई बार पिता के हाथों दण्डित भी होना पड़ा था। इसके बावजूद पिता उसकी तर्कशक्ति और प्रतिभा की कद्र करते थे।

प्रारंभिक शिक्षा के बाद नरेन्द्र को कान्वेंट शिक्षा के लिए

मेट्रोपोलेटिन स्कूल में भर्ती कराया गया। प्रवेशिका में वह प्रथम श्रेणी में पास हुए। माता–पिता के सानिध्य में रहते हुए नरेन्द्र का बचपन, किशोरावस्था बीती। प्रेसीडेंसी कॉलेज में अध्ययन के दौरान पाश्चात्य दर्शन को भी नरेन्द्र ने गंभीरता से पढ़ाई की। जिस कारण उसके मन में ईश्वर के अस्तित्व को लेकर कई शंकाएं भी उत्पन्न हो गई थीं। माँ के सानिध्य में रहने के कारण मिली धार्मिक शिक्षाओं से वह एक अजीब से द्वन्द से घिर गए। जिसका वह समाधान ढूँढने के लिए वह ब्रह्म समाज की सभाओं में गए पर, वहाँ भी उन्हें संतुष्टि नहीं मिल सकी। रामकृष्ण से मिलने के बाद ही उनकी इन शंकाओं का समाधान हो सका।

रामकृष्ण परमहंस से मिलने की प्रेरणा के दो प्रसंग सामने आए हैं। इनमें एक ब्रह्म समाज से जुड़े देवेन्द्र नाथ ठाकुर और दूसरा इनके चचेरे भाई का भी उदाहरण मिलता है। कुछ स्थानों पर तो रामकृष्ण से उनकी प्रथम साक्षात्कार स्कूली कार्यक्रम तो कुछ में देवेन्द्र नाथ ठाकुर के मित्र सुरेन्द्र नाथ के घर पर हुए कार्यक्रम में होना माना जाती है। प्रथम साक्षात्कार के समय ही रामकृष्ण ने नरेन्द्र से दक्षिणेश्वर आने की बात भी कही।

15 जनवरी 1882 को नरेन्द्र उनसे मिलने दक्षिणेश्वर गए। जहाँ रामकृष्ण ने उनका सत्कार किया। रामकृष्ण नरेन्द्र को देखते ही कहा– 'मैं कब से तेरी राह तक रहा हूँ? तू अब तक कहाँ था?' वहीं नरेन्द्र को भी उनसे अपने मन में उठ रहे द्वन्द का समाधान चाहिए था। उसने एक सवाल पूछा 'क्या आपने ईश्वर को देखा है?' परमहंस ने उनसे कहा 'हाँ देखा है। जैसा तुम्हें देखता हूँ, बिल्कुल वैसे ही भगवान को देखा है।'

नरेन्द्र को पहला व्यक्ति मिला था जो उसके अन्तर्द्वन्द को दूर करने में सहायक साबित हुआ। ठाकुर जी (रामकृष्ण परमहंस) ने नरेन्द्र की शंकाओं का अपने तरीके से समाधान किया। ठाकुर जी ने नरेन्द्र की परीक्षा ली और नरेन्द्र भी तरह–तरह से ठाकुर जी का परीक्षण करता था। जिस कारण धीरे–धीरे दोनों के बीच के सम्बन्ध प्रगाढ़ होने लगे और दोनों में एक दूसरे के प्रति मोह विकसित हुआ। परिणामस्वरूप नरेन्द्र भी बार–बार उनसे मिलने आने लगा। काफी परखने के बाद ही नरेन्द्र ने ठाकुर जी का शिष्यत्व स्वीकार किया।

1885 के आस–पास ठाकुर जी के स्वास्थ्य में तेजी से गिरावट आने लगी। उनके गले में कैंसर रोग का प्रभाव बढ़ गया था। गुरु की गंभीर बीमारी को देखते हुए नरेन्द्र का उनके प्रति सेवा भाव और बढ़ गया। परिणामस्वरूप वह घर छोड़ कर गुरु की भक्तिपूर्वक देख–रेख में तल्लीन हो गये। वह गुरुभक्ति में इतने लीन रहते थे कि उन्हें कुछ भी होश न रहता था। एक बार तो उन्होंने गुरु भाइयों के समक्ष ठाकुर जी का वमन भी पी लिया।

ठाकुर जी अपने प्रिय शिष्य की आहुति को राष्ट्र के चरणों में अर्पित कर देना चाहते थे। 15 अगस्त 1886 को ठाकुर जी ने महासमाधि ली। जिसके बाद नरेन्द्र ने शारदा माँ और गुरु भाइयों की देख रेख का जिम्मा लिया।

पूरी हुई तलाश

नरेन्द्र का गुरु के प्रति त्याग का भाव इतना पवित्र था कि ठाकुर जी द्वारा अपनी सिद्ध शक्तियों को देने की बात कहने पर भी उन्होंने उसे स्वीकार करने से मना कर दिया। इससे जुड़े एक प्रसंग में ठाकुर जी ने नरेन्द्र से कहा कि 'कठोर तपस्या के फलस्वरूप मैंने बहुत सी सिद्धियाँ अर्जित कर ली हैं, पर मुझे उनका उपयोग करने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। तुम्हें माँ (काली देवी) का बहुत सा कार्य है, जो पूरा करना है इसलिए माँ से अनुमति लेकर मैं इसे तुम्हें देना चाहता हूँ।' ठाकुर जी की बात सुन कर नरेन्द्र ने कहा कि 'क्या इससे मैं ईश्वर का दर्शन कर सकूंगा?' ठाकुर जी ने कहा– 'नहीं यह उसके बाद तुम्हारे काम आएंगी।' नरेन्द्र ने सहर्ष ही उन्हें स्वीकार करने से मना कर दिया। (जबकि वह ठाकुर जी की अलौकिक शक्तियों से परिचित थे) उन्होंने कहा कि 'इन्हें पाकर यदि मैं अपने ध्येय पथ से भटक जाऊं और स्वार्थ सिद्धि के लिए उनका अनुचित उपयोग करूँ तो यह हानिकारक होगा।' नरेन्द्र के इस उत्तर पर ठाकुर जी काफी प्रसन्न हुए।

ठाकुर जी को ऐसे ही त्यागी शिष्य की तलाश थी, जो कि पूरी हुई।

विपत्तियों का वज्रपात

48 साल की उम्र में पिता विश्वनाथ दत्त की मृत्यु के बाद नरेन्द्र के समक्ष घर चलाने का भी दवाब आ गया था। पिता जी ने कोई जमा पूँजी नहीं छोड़ी थी। मुक्त हस्त होने के कारण उन्होंने बहुत से लोगों को कर्ज भी दिया था, लेकिन मृत्यु के बाद कोई भी उनकी मदद के लिए आगे नहीं आया। वहीं नरेन्द्र के काका और चचेरे भाइयों ने भुवनेश्वरी देवी को बहला–फुसला कर सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया था।

स्थितियाँ इतनी विपरीत हो गई थी कि घर चलाना मुश्किल हो गया था। नरेन्द्र ने परिचितों और सम्बन्धियों से मदद माँगने का प्रयास भी किया, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। घर की हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ने लगी थी। किशोर नरेन्द्र को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। वह इधर–उधर हाथ–पाँव मार भी रहा था लेकिन हर बार उसे असफलता के आगे आत्मसमर्पण करना पड़ता था। स्थितियाँ इतनी विपरीत हो गई कि घर में जाने के लाले पड़ गए। नरेन्द्र माँ को भूखा नहीं देख सकते थे। घर में बड़ी मुश्किल से खाद्य सामग्री जुटती थी, जो अपर्याप्त होती थी। माँ भूखी न सोए इसलिए नरेन्द्र माँ से झूठ भी बोलते थे। उन्होंने यह बात स्वीकार भी की कि कई बार उन्हें यह कहना पड़ा था कि वह फलाँ मित्र के यहाँ भोजन कर आया हूँ। वास्तव में वह भोजन करते ही नहीं थे और माँ को काल्पनिक मित्रों का नाम बताते थे। जिससे वह भोजन करके सोए।

माँ के दुःख से भारत माँ के दुःख तक

बदहाल पारिवारिक परिस्थितयों से तंग आकर माँ भुवनेश्वरी देवी ने नरेन्द्र से ठाकुर जी से मदद माँगने को कहा, तो नरेन्द्र हिचकिचाए और बाद में माँ के काफी दवाब डालने पर वह ठाकुर जी के पास गए। उन्होंने ठाकुर जी को सारी बात बताई तो ठाकुर जी ने उनसे माँ (काली देवी) से अपने लिए कुछ वरदान माँगने को कहा। नरेन्द्र यह सोचकर कि माँ से घर

की आवश्यकताओं के लिए कुछ माँगेगें, लेकिन जब वह माँ के सम्मुख पहुँचे तो उन्होंने कहा, माँ मुझे विवेक दो, वैराग्य दो और ऐसा करो जिससे मैं नित्य तुम्हारा दर्शन पा सकूँ। ऐसा एक बार नहीं हुआ बल्कि ठाकुर जी के तीन बार भेजने पर भी उन्होंने माँ से विवेक, वैराग्य और उनका नित्य आशीष ही माँगा।

माँ भुवनेश्वरी देवी का दुःख भारत माँ के दुःख में एकाकार हो गया और युवा नेरन्द्र ने भारत माँ के दुःख को दूर करने के लिए संन्यास ग्रहण कर लिया।

देश की तत्कालीन परिस्थितियाँ

ठाकुर जी के देहावसान के बाद उनके निर्देशानुसार नरेन्द्र गुरुभाइयों और माँ शारदा को साथ लेकर रहने लगे। माँ के कार्य के लिए उन्होंने सन्यास की दीक्षा ली। उनके साथ उनके गुरु भाई भी सन्यासी बने। दीक्षा के पश्चात् गुरु की इच्छानुरूप एक संघ की स्थापना की, जिसे उन्होंने 'रामकृष्ण संघ' का नाम दिया गया। कालान्तर में यही संघ रामकृष्ण मिशन के नाम से प्रचलित हुआ।

विविदिशानन्द (संन्यास लेने के बाद नरेन्द्र का नाम) पर वर्तमान सामाजिक परिवेश का काफी गंभीर प्रभाव था। वह उस समय के बंगाल की दुर्दशा को देखकर विचिलित हो उठते थे। उस समय वहाँ सुधारवादी आन्दोलन चरम पर थे।

समाज तीव्र गति से अवनति की ओर जा रहा था। बंगाल मुगलों के हाथों से अंग्रेजों द्वारा बुरी तरह लूटा जा चुका था। वहाँ का गौरव समाप्त हो चला था। धीरे-धीरे अंग्रेजों की नीति का विस्तार हो रहा था। व्यापार करने आए अंग्रेज देश का ही सौदा करने लगे थे। उस समय राष्ट्रीय स्वाभिमान का सर्वाधिक क्षति भी पहुँची थी। मुगलों की दासता के बाद से ही हिन्दू समाज का सांस्कृतिक चीरहरण शुरू हो गया था। अंग्रेजों के आगमन से इसका स्वरूप तेजी से विकृत हो चला था। इसी समय सामाजिक वैमन्सय भी तेजी से बढ़ रहा था। 19 वीं शताब्दी आते-आते

भारतीय जनमानस का बचा–खुचा स्वाभिमान धूल धूसरित हो चुका था।

मुगलों ने भारत की शिक्षा व्यवस्था में छेद तो किया ही था लेकिन अंग्रेजों के आने और लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति को लागू करने के बाद देश के आत्मबल और स्वाभिमान गिरावट शुरू हो गई। मुगल कालीन सांस्कृतिक आक्रमणों से रक्षा करने की जो व्यवस्थाएं बनाई गई इस नए सांस्कृतिक आक्रमण से रक्षा के लिए वह विफल साबित हुई। ग्लानि और कुंठा से विकृत हो चले समाज ने नई व्यवस्था देने का प्रयास नहीं किया। जिसके परिणाम स्वरूप सांस्कृतिक सुरक्षा के कारगर उपाय अब सामाजिक विकृति बन गए थे। उसके बाद भी भारतीय मनीषा ने सीख लेना उचित न समझा। इसके साथ ही चर्च की सक्रियता बढ़ गई थी, जिसके अनर्गल प्रलापों से धार्मिक और सांस्कृतिक अपभ्रंशन शुरू हो गया। वहीं समाज सुधारक संस्थाओं ने भी नकारात्मक वातावरण फैला कर सामाजिक ताने बाने को बिगाड़ने का प्रयास किया। उन सबने समाज की विकृतियों को सुधारने के बजय चर्च की तरह ही उसे प्रदर्शित करने का बीड़ा उठा लिया। इसके कारण भारतीय समाज में अपनी संस्कृति से ही घृणा का भाव उत्पन्न होना शुरू हो गया। जो अंग्रेजों की विस्तारवादी नीतियों में सहायक साबित हुआ। जिस कारण सामान बेचने आए बनिए देश के नीति नियंता बन बैठे।

उसके बाद भी चर्च का कार्य करने में मिशनरी को काफी कठिनाइयों का सामाना करना पड़ता था, क्योंकि विकृतियों के बाद भी समाज की संरचना की जटिलता से यह कार्य आसान नहीं था। सो उन्होंने सेवा और शिक्षा की आड़ में अपना कुत्सित प्रयास शुरू किया।

वहीं धर्म की आड़ लेकर बहुतेरे ठगों ने भी अपनी दुकान खोल रखी थी, इससे सभी हिन्दू अस्मिता पर कुठाराघात हुआ।

मैकाले की नीति के प्रभाव में आ जाने से हिन्दू समाज की ज्ञान पिपासा जिसके लिए वह विख्यात थी विकृति आनी शुरू हो गई।

स्वामी जी का राष्ट्रधर्म के प्रति जो मानस निर्मित हुआ है वह उनके भारत भ्रमण का ही परिणाम था। देश की बुरी स्थितियों को देखकर ही उनका ह्रदय विचलित हुआ। वह फूट–फूट कर रोते थे। वही 1857 के स्वातंत्र्य समर की विफलता के बाद अंग्रेजों की क्रूरता भी अपने चरम पर

बढ़ रही थी जिसका अनुभव उन्हें यात्रा काल में कई बार हुआ।

वह कुपित होते थे वह लोगों से इस बारे में चर्चा भी करते थे। वह यहाँ भी लोक शिक्षण के माध्यम से जनजागरण की बात को आगे बढ़ाते थे।

देश की वर्तमान परिस्थितियों को जानने के बाद वह उनके निराकरण के लिए उद्यमशील होने का प्रयत्न करते थे।

मन की पीड़ा मिटाने का निश्चय

देश का भ्रमण के दौरान विवेकानन्द कन्याकुमारी पहुँचे। उनके मन में निराशा, अन्धकार का भाव इतना घर कर चुका था, कि उसकी शांति का कोई मार्ग उन्हें सूझ नहीं रहा था। देश की वर्तमान परिस्थितियों पर अब उन्हें उनकी पीड़ा का उत्तर चाहिए था। उसके लिए श्रीपाद शिला की ओर जाने के लिए तैयार हुए जहाँ भगवती ने 12 वर्ष कठोर तपस्या की थी। वह इतने विचलित थे कि उन्होंने समुद्र में छलांग लगा दी और तैरकर वहाँ गए। 25 से 27 दिसम्बर 1892 तक वे श्रीपाद् शिला पर ध्यानमग्न रहे। जहाँ उनके सवालों का उन्हें उत्तर मिला और उन्होंने शिकागों में होने वाले धर्म सम्मेलन में जाने का निश्चय किया।

विदेशों में हिन्दुत्व आधारशिला

इसके बाद वह मित्रों के सहयोग से 31 मई 1893 कों शिकागो के लिए रवाना हुए और 11 सितम्बर से 27 सितम्बर तक हुई विश्वधर्म महासभा में हिस्सा लेकर भारत और हिंदुत्व का डंका बजा दिया। बाद में वह अमेरिका के अन्य हिस्सों, इंग्लैण्ड सहित यूरोप के कई देशों में व्याख्यान करते रहे। 4 वर्षो की विदेश यात्रा के बाद वह 15 जनवरी 1897 को भारत आए और फिर से उन्होंने पूरे देश भर में घूम–घूम कर प्रवचन किया। जो आगे भारतीय व्याख्यान के नाम से प्रचलित भी हुए।

महासमाधि

20 जून 1899 को वह पुनः पश्चिम गए। वहाँ इंग्लैण्ड और अमेरिका में उन्होंने व्याख्यान दिए। फिर 6 दिसम्बर 1900 को बंबई आ गए। जनवरी में वह बेलूर मठ वापस आ गए और 4 जुलाई 1902 को

उन्होंने महासमाधि ली।

कुशल रणनीतिज्ञ

स्वामी विवेकानन्द को किसी भी अर्थ में कुशलरणनीतिकार कहना अतिशयोक्ति नहां होगा। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से इस बात का कभी प्रदर्शन भी नहीं किया लेकिन, अपने गुरुभाइयों, मित्रों को लिखे पत्रों और उनके भाषणों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि आसानी से की जा सकती है। जिसमें देशकालीन समस्याओं के प्रति रणनीतिक उत्तर की झलक स्वाभाविक रूप से दिखाई देती थी।

इसके पीछे कहीं न कहीं देश की तात्कालिक परिस्थितियाँ जरूर जिम्मेवार रही होंगी। देखा जाए तो 1830 में लागू हुई मैकाले की शैक्षिक विकृति का प्रभाव उनके जन्म के समय ही दिखाई पड़ने लगा था। मैकाले के लिखे गए पत्र के अनुसार 1860–65 के काल में अंग्रेजों की पहली खेप भी निकल चुकी थी। इससे ठीक पहले 1857 का राष्ट्रीय संग्राम भी विफल हो चुका था। जिसमें स्वराज और स्वधर्म के प्रति संघर्ष की बात प्रमुखता से कही गई थी। वहीं प्रो. मैक्स मूलर की क्षद्म नीति भी आ गई थी। इसके लिए उन्होंने वेदों और भारतीय ग्रंथों पर भाष्य लिखे थे। जिसका जिक्र उसने अपनी पत्नी से किया भी था। उसके शब्दों में ''यदि भारतवासी मेरी कृतियों का समर्थन करेंगे तो वह निःसंदेह ही अपनी संस्कृति का अनादर करना शुरू कर देंगे।'' स्वामी विवेकानन्द इसे लेकर काफी विचलित भी होते थे। इस समस्या के समाधान के लिए वह अपने वक्तव्यों के माध्यम से सांस्कृतिक स्वाभिमान को जगाए रखने की बात भी करते थे। उस समय मिशनरी और समाज सुधार की कुछ संस्थाओं द्वारा भारतीय जन मानस के आत्मविश्वास को तोड़ने स्वाभिमान को कुण्ठा और ग्लानि में बदलने का उपक्रम तेजी से शुरू भी हो चुका था। वह छोटी–छोटी सामाजिक कुरीतियाँ (जो धार्मिक कतई नहीं थीं) को धर्म की गड़बड़ी के नाम पर प्रचारित करने का दुष्चक्र शुरू कर चुके थे। इसके उत्तर में स्वामी विवेकानन्द रामानुज, शंकर, नानक, चैतन्य कबीर और दादू की समाज सुधारक नीतियों का समर्थन करते थे।

प्रो. मुलर और मैकाले द्वारा रचे गए बौद्धिक षडयंत्रों से स्वामीजी भली भाँति परिचित थे। वे देख रहे थे कि वेदों, इतिहास और शिक्षा के विकृतिकरण की गहरी साजिशों के माध्यम से भारतीयों में यह भावना भरने की कोशिश हो रही है कि भारत भेड़–बकरियों के चरवाहों और सपेरों का देश है। यहाँ के लोग निरक्षर और असभ्य है। इनके पूर्वज भी इन्हीं की तरह असभ्य, वैभवहीन और छल–प्रपंचों से भरे लोग थे, पशुओं को चराते हुए समय बिताने के उद्देश्य से ये कुछ कल्प और किंवदतियों का निर्माण किया करते थे, काल्पनिक कथाएं रचा करते थे। इनके वेद इन्हीं का संकलन हैं और रामायण तथा महाभारत मिथकीय ग्रन्थ हैं।

वह कहते थे, 'हिन्दुओं तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया, पर भाइयों, तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा। वह बारंबार यह ही कहते थे कि हम अच्छे थे, हम अच्छे हैं और हम अच्छे बनेंगे। इसके पीछे वह इतिहास के बोध की बात भी रखते थे, जो स्वाभिमान की भावना के विकास के लिए आवश्यक ईधन है। इसके साथ ही विकृत इतिहास का उत्तर देते हुए आत्म विश्वास में बढ़ाने को चेष्टा भी करते थे। इतना ही नहीं इन्हीं शब्दों में भारत को ऊपर उठाने का संकल्प भी अवश्य परिलक्षित होता है।

वह नकारात्मकता फैलाने वालों की आलोचना करते थे। इसलिए वह प्राचीन सुधारकों के सतत उन्नतशील रहने के सिद्धान्तों का समर्थन करते थे। इसके लिए वह अपनी योजना का वर्णन करते हुए कहते हैं, मेरी योजना है – प्राचीन महान आचार्यो के उपदेशों का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन भी किया है और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया, उनके आवष्किार का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान समाज संस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन शक्ति के वे अद्‌भुत आधर थे। उन्होने सबसे अद्‌भुत कार्य किया – समाज में बल, पवित्रता और जीवन शक्ति संचारित की। आज व्यवस्था थोड़ा परिवर्तित हो गई है, इसलिए कार्य प्रणाली में थोड़ा सा परिवर्तन करना होगा, इससे अधिक कुछ नहीं।

भारतीय युवाओं में स्वाभिमान के विकास के लिए वे अंग्रेजों का उदाहरण भी प्रस्तुत करते थे। कहते थे कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अंग्रेज हूँ, तो वह उसी विश्वास के बल पर जो चाहता है वह कर सकता है। वह युवाओं से कहते थे

हमें अपनी अकमर्णयता त्यागनी होगी। हम लोग बहुत दिनों तक रो चुके अब रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और मर्द बनो। हमें ऐसे धर्म की जरूरत है , जिससे हम मनुष्य बन सकें। आत्म विश्वास और आत्मबल बढ़ाने के लिए वह वीर्यवान बनने की प्रेरणा देते थे। बलशाली बनने की बात कहते थे। वह यहाँ तक कहते थे कि चोर हो लेकिन बलशाली हो तो भी चलेगा, लेकिन कमजोर विद्वान से काम चलने वाला नहीं। क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति जब चाहेगा तब अपने मन पर नियंत्रण कर लेगा।

वह युवाओं को आत्मवान बनने के लिए भी बारंबार प्रेरित करते रहते थे। जिससे मनुष्य अपनी सारी शक्तियों का उपयोग दु:खी मानवों की सेवा करने में कर सके और उन्हें सुखी बना सके। वह सेवा को ऋणों से मुक्ति का साधन भी मानते थे। इसके लिए वह 'आत्मनो मोक्ष: जगत हिताय च।' की बात करते हुए देश सेवा और मानव सेवा की बात करते थे। इसलिए वह युवाओं को सन्यासी और वैरागी बनने की प्रेरणा देते थे।

वह ऊपरी सुधार के बदले आमूल परिवर्तन के पक्षधर थे और यह परिवर्तन अपनी अनुभूति और पराक्रम के बूते होना चाहिए इसकी चर्चा वह बार--बार करते थे।

वह तत्कालीन समाज सुधारक संस्थाओं की घृणावृत्ति पर बरसते भी थे। वह कहते थे – यदि हिन्दू अपने घरों को साफ करने की चेष्टा करते हों तो इससे ईसाई मिशनरियों का क्या बिगड़ता है? यदि हिन्दू प्राणपण में सुधार का प्रयत्न करते हैं तो इससे ब्रह्म समाज और अन्य समाज सुधार संस्थाओं का क्या जाता है? ये लोग इस आंदोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हैं? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध में क्यों खड़े हैं? क्यों? मेरा प्रश्न यही है।

देश की समस्याओं के प्रति स्वामी विवेकानन्द की इन्हीं चिन्ताओं ने सम्भवत: उन्हें रणनीतिक बना दिया है।

उनका तर्क था कि वैयक्तिक साधना से मोक्ष की प्राप्ति भले ही न हो लेकिन मानव सेवा से इस लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा जा सकता है। वह कहते थे कि युवाओं के लिए वैयक्तिक साधना विकल्प नहीं हो सकती है। युवाओं को सेवा कार्य में अपना समय देना चाहिए और लोक शिक्षण के

माध्यम से जनजागरण का कार्य भी करना होगा। वह इसलिए भी सन्यास और वैराग की बात करते थे क्योंकि भारतीय समाज में इन्हें सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। उसके माध्यम से वह भारतीय समाज में आमूल परिवर्तन की दिशा में बढ़ते कदम देखना चाहते थे।

इस तर्क को मजबूती प्रदान करने के लिए ही वह कहते थे कि मैं उस ईश्वर का सेवक हूँ जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।

दायित्वबोध जगाने की बात बारंबार उन्होंने अपने वक्तव्यों में कही है। दायित्वबोध यदि दिलाने के पीछे भी उनके मंशा कहीं न कहीं राष्ट्रभक्ति के प्रति प्रेरित करने वाली थी।

वह कहते हैं कि दीन–हीन, दुखियारों, पीड़ितों को देखने पर तुम्हारे मन में करुणा का भाव उत्पन्न होता है। तुम्हारा मन फूट–फूटकर रोने को कहता है। तो यह राष्ट्र भक्ति की पहली सीढ़ी है। उनकी सेवा करने, उनके दु:खों को दूर करने के लिए यदि तुम संकल्प लेकर कार्य करने के लिए तत्पर होते हो तुममें उनके लिए घर परिवार मित्रों को त्याग करने की चेष्टा का भाव आए तो, यह राष्ट्र भक्ति की दूसरी सीढ़ी है।

इतना ही नहीं तुम्हारी इस चेष्टा पर परिवार नाराज होगा, मित्र रिश्ते–नाते सब सम्बन्ध तोड़ने को प्रयत्नशील होंगे। समाज में तुम्हारा विरोध भी होगा। तुम्हारे मार्ग में बाधाएं खड़ी की जाएंगी। इसके बावजूद तुममे अपने संकल्प से पीछे न हटने की इच्छा बलवती रहे तो सच्चे अर्थों में तुम ही राष्ट्रभक्त हो। ऐसा नहीं है कि समाज तुम्हारा विरोध करेगा वह तुम्हारे समर्थन में भी खड़ा होगा।

यह शब्द ही उनके इसके पीछे की रणनीति को बताने के लिए पर्याप्त है कि वह देश के युवाओं को दायित्व बोध कराने के लिए किस प्रकार उद्यम में लगे थे।

उन्होंने जहाँ एक ओर विश्व धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म का प्रचार और उसकी मान्यताओं को स्थापित करने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने भारत में सेवा के नाम पर किए जा रहे खेल का खुलासा भी किया। जिसके परिणामस्वरूप मिशनरियों के सहयोग के लिए भेजे जा रहे अनुदान में भारी कटौती की बात सामने आई।

इस बारे में बैरोज ने भी अपनी रिपोर्ट में मिशनरी को मिलने वाले

अनुदान में 10 लाख पौंड की वार्षिक क्षति की बात कही थी।

मार्च 1894 में अमेरिकन क्रिश्चयन मिशन की रिपोर्ट जिसे श्रीमती एस.ई. वाल्डो ने स्वामी जी कि सम्मुख रखा था। जिसमें स्पष्ट था कि स्वामी विवेकानन्द के ही उपदेशों और शिक्षाओं के प्रकाश के कारण अमेरिकी जनता द्वारा मिशन को दान स्वरूप मिलने वाले अनुदान में 10 लाख पौंड की भारी क्षति हुई। यह नुकसान विवेकानन्द की ही रणनीति का परिणाम था। देशवासियों की सहायता के लिए उन्होंने धन भी जुटाने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने अपने भाषणों का सहारा लिया। वह इतने पर ही नहीं रुके इंग्लैण्ड में उन्होंने वेदान्त केन्द्र की आधार शिला रखी और पश्चिम में योग को स्थापित करने का काम किया। इसे लेकर वे आशांवित थे और अक्सर उत्साहित भी होते थे। अमेरिका से अपने मित्र अलासिंया पेरुमल को भेजे पत्र में इसका जिक्र भी मिलता है। वह बौद्धिक रूप से दुनिया को जीत कर भारत को विश्वगुरु बनाने की चेष्टा कर रहे थे, जिसमें कुछ हद तक उन्होंने सफलता भी अर्जित की। पेरूमल को वह लिखते हैं कि मुझे 20 युवा सन्यासी मिल जाएं तो मैं 10 वर्षो में आधा अमेरिका जीत सकता हूँ। उनकी बातों में अजीब सी दृढ़ता थी, जो बरबस ही सबको खींचती थी। यह उनके रणनीतिक कौशल के ही कारण संभव हो सका था।

प्रियानन्द को भेजे पत्र में उन्होंने लिखा था कि यदि मैं सच बताऊं तो विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजकों को पहले ऐसा लगता था कि उस धर्म सम्मेलन के बाद सारा संसार ईसाई धर्म के झंडे के नीचे आ जाएगा और सर्वत्र उसकी विजय पताका फहराई जाने लगेगी, किन्तु इस आयोजन के बाद वे बड़े निराश हुए। वर्क लुई ने भी स्वामी जी के इस मत से अपनी सहमति व्यक्त की। डॉ. बैरोज ने भी उस आयोजन को पूर्व निर्धारित उद्देश्य के सम्बन्धों में निष्फल घोषित करत हुए उसका कारण स्वामी विवेकानन्द को माना है।

यह विवेकानन्द के रणनीतिक कौशल का ही परिणाम था कि कल तक जो समाचार पत्र भारत और हिन्दूधर्म के विषय में भ्रामक समाचार छापते थे। विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी जी के स्वागत भाषण को सुनने के बाद ही उनकी खबरों का बदला स्वरूप सबके सामने दिखाई दे रहा था।

न्यूयार्क हेराल्ड ने खबर छापी कि शिकागो धर्मसभा में विवेकानन्द

ही सर्वश्रेष्ठ है। उनका भाषण सुनकर ऐसा लगता है कि, ऐसे भारत देश जहाँ के सन्यासी इतने विद्वान हैं, वहाँ ईसाई मत क़े प्रचारकों को भेजना मूर्खता पूर्ण होगा, बल्कि वहाँ के सन्यासियों को यहाँ बुलाकर उनसे धर्म की शिक्षा लेनी चाहिए।

दि प्रेस ऑफ अमेरिका में खबर छपी, 'हिन्दू दर्शन विज्ञान के प्रचारक स्वामी विवेकानन्द सभी प्रतिनिधियों में पहले पायदान पर हैं। जिन्होंने अपने भाषण द्वारा विराट सभा को सम्मोहित कर दिया। आधुनिक प्रत्येक ईसाई चर्च के पादरी, प्रचारकगण वहाँ पर मौजूद रहे लेकिन विवेकानन्द की वाक्पटुता और तार्किक शैली के आगे कहीं टिक नही सके।

पॉयनियर में भी खबर छपी कि हिन्दू धर्म के एक मात्र प्रतिनिधि विवेकानन्द ही इस महासभा के निर्विवाद रूप से सबसे लोकप्रिय व प्रभावशाली व्यक्ति हैं।

धर्मसभा में बौद्ध धर्म के प्रतिनिधि के रूप में गए धर्मपाल ने भी कहा कि विवेकानन्द में देशभक्ति कूट–कूट कर भरी थी। सम्मेलन में स्वामी ही ऐसे प्रतिनिधि रहे जिन्होंने राष्ट्रधर्म की बात कही। सच्चे अर्थो में भारत का प्रतिनिधित्व उन्होंने किया और सभा में मौजूद 7000 लोगों में से कोई भी ऐसा नहीं था जो उनसे सम्मोहित न हुआ हो।

देश की दुर्दशा, गरीबी, अशिक्षा को लेकर वह चिंतित रहते थे। चाहे वह देश के भीतर रहे हों या देश के बाहर, उन्हें सर्वाधिक चिन्ता यदि किसी बात की थी तो वह आम भारतीय जनमानस की सुख समृद्धि के लिए उद्यम करने की ही थी। इसके लिए भी उन्होंने रणनीति बनाई थी, जिसके तहत उन्होंने देश का भ्रमण किया। भ्रमण के दौरान वह जब भी राजाओं, सामाजिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिले। उन्होंने गरीबी, अशिक्षा, कृषि, देश की समस्याओं पर चर्चा और उनसे इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ आश्वासन अवश्य लिया। वहीं खेतड़ी के महाराजा अजीत सिंह, कन्याकुमारी के महाराजा भास्कर सेतुपति और मैसूर के महाराजा चामरेन्द्र वादियार से भी अनेक विषयों पर चर्चा कर समस्याओं के निदान के लिए उद्यम किया।

उनके पूरे जीवन में दी गई शिक्षाओं को ध्यान से देखेंगे तो यह तथ्य भी सामने आएगा कि उनके जीवन में नकारात्मकता के लिए कोई जगह नहीं थी। उनकी किसी भी बात या वक्तव्य में नकारात्मकता नहीं

दिखाई देती थी।

इन उपरोक्त विषयों को भी देखेंगे तो प्रत्येक जगह उन्होंने सकारात्मक प्रेरणा का संचार कह नकारात्मक विषयों को समाप्त भी करने का प्रयास किया। इसके पीछे देखेंगे तो पाएंगे कि इससे स्वामी जी के विचारों को काफी बल मिला। जब–जब विरोधी सक्रिय हुए और उनके द्वारा अनर्गल प्रचार भी शुरू किया गया तो भी विवेकानन्द अपने उद्यम में ही लगे रहे। परिणामस्वरूप लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान का भाव और स्वीकार्यता दोनों बढ़ी। जिससे उनके आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रेरणास्रोत के रूप में

स्वामी विवेकानन्द जी का सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रभक्ति को समर्पित था। वह नवयुवकों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि यदि देश को पुनः उसका वैभव वापस दिलाना है तो आगामी 50 वर्षों तक भारत माँ को ही अपनी आरध्या स्वीकार करो और इस पवित्र भूमि की पूजा करो।'

भगिनी निवेदिता ने स्वामी जी की जीवनी में लिखा है, उनकी उपासना की अधिष्ठात्री देवी भारत माता थी। इस देश में कहीं भी, किसी की भी आँखों में कभी आँसू उमड़े तो उसकी प्रतिक्रिया उनके मन में निश्चय ही प्रकट होती थी।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते थे कि प्यारे भाइयों, चारों ओर यह संदेश गूँजने दो कि यह नंगा और भूखा भारतीय, निरक्षर भारतीय, ब्राह्मण और शूद्र भारतीय मेरा ही अपना भाई है।

स्वामी जी के वक्तव्य आम भारतीय जनमानस के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते थे। उनकी भविष्यवाणी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के आत्म विश्वास को और अधिक बलवती करती थी। उन्होंने भारत भूमि के विषय में भविष्यवाणी की है, हमारी भारत माता घोर निद्रा से जाग रही है किसी में भी यह क्षमता नहीं कि इस जागरण को रोक सके। जागृत भारत फिर नहीं सोने वाला। बाहर की कोई भी शक्ति उसे दबाकर न रख सकेगी। भगवान

का अकाट्य आदेश है कि इस बार भारतवर्ष का अभ्युदय अवश्यम्भावी है, देश की दुर्गति प्राप्त जनता के सुख समृद्धि के दिन निकट हैं।

स्वामी जी ने हृदय से यह अनुभव किया था कि भारत माता तभी जागेगी जब आम जनता की हालत सुधरेगी। इसीलिए गरीबों के लिए सहानुभूति एवं प्रेम की अनवरत धारा से प्रवाहित हृदय से उन्होंने अपने देश के युवकों को लिखा था, 'मैं गरीबों, अशिक्षितों तथा उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाली के तौर पर तुम्हें सौंपता हूँ.............। अपना पूरा जीवन दिनोंदिन डूबते जा रहे इन करोड़ों लोगों के उद्धार के लिए अर्पण कर देने का व्रत लो।''

भारत माँ और आम भारतीय के लिए स्वामी जी प्रेम की प्रतिमूर्ति थे। उनके सम्पर्क में आने वाला हर शख्स भारत से प्रेम करने लगता था। स्वामी जी की शिष्या क्रिस्टीन कहती हैं कि, 'मैं सोचती हूँ हमारे भीतर भारत के प्रति प्रेम का जन्म उसी समय हो गया था जब उनकी चमत्कारी वाणी से 'भारत' पहली बार सुना। विश्वास नहीं होता कि तीन अक्षर के इस छोटे से शब्द में इतना चमत्कार हो सकता है। उनमें प्रेम, उत्कण्ठा, गर्व, आकांक्षा, आराधना, शोकान्तिकता, वीरता और पुनश्च प्रेम था। समस्त ग्रन्थ भी लोगों में ऐसे भाव नहीं जगा सकते थे। जिन्होने भी उस शब्द को सुना, उन पर प्रेम का जादू चल गया। सदा के लिए भारत भूमि उनके हृदयों की कामना बन कर रह गई।

स्वामी जी एक आदर्श सन्यासी थे, उन्हें भारत से गहरा प्रेम था और वह कहते थे, 'यदि भारत का नाश हो गया तो इस पृथ्वी से धर्म का भी लोप हो जाएगा।' भारत अपनी आध्यात्मिक विरासत के कारण ही महान रहा है। उसे सर्वत्यागी शिव के आदर्श को पकड़े रहकर पुनः अपनी प्राचीन गरिमा हासिल करनी होगी।

स्वामी विवेकानन्द भारत में स्वतंत्रता आंदोलन में विखराव को लेकर चिंतित भी थे। वह कहते थे कि उस समय देश में चल रहे ऐसे राजनैतिक आन्दोलनों से किसी विशेष फल की बात न निकलने की बात कहते थे। वह उन्हें आन्दोलन की शक्ति का हास के अतिरिक्त कुछ न समझते थे। वह सारे देश में एक साथ समग्र आन्दोलन के पक्ष में थे। इसलिए वह कांग्रेस जैसी देशव्यापी संस्था की आवश्यकता पर बल देते

थे।

डॉ. केदार नाथ लाभ लिखते हैं – 'स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था, किंतु उनके अग्निदीप्त विचारों ने 20वीं शताब्दी के भारत और विश्व की चेतना को झकझोर दिया था। हमारे सभी प्रमुख जननायकों ...... महात्मा गाँधी, तिलक, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू आदि ने स्वामी जी से प्रेरणा प्राप्त कर देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया था।'

स्वामी निदेहात्मानन्द के शब्दों में –'भाृतीय स्वाधीनता के विराट यज्ञ में जिन महान विभूतियों ने अपना तन–मन–धन न्यौछावर कर दिया, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ऐसे अग्रगण्य लोगों में अन्यतम थे। नेताजी को बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की प्रेरणा स्वामी विवेकानन्द से ही मिली थी। यद्यपि वे स्वामीजी से साक्षात मिल नहीं सके थे, तथापि भावरूप में मानो वे उन्हीं के द्वारा 'अग्निमंत्र' में दीक्षित हुए थे।

इसी प्रकार स्वामी यतीश्वरानन्द जी लिखते हैं – 'मैं रामकृष्ण–विवेकानन्द भाव धारा के सम्पर्क में आया, उन दिनों पूरे भारत और विशेषकर बंगाल में राष्ट्रीयता के महान आन्दोलन का सूत्रपात हो रहा था। स्वामी जी के व्याख्यान तथा लेखों ने इस आन्दोलन को आध्यात्मिक भाव से प्रेरणा प्रदान की तथा हमारे ही समान विश्वविद्यालय के कई छात्रों ने इस राष्ट्रीय आंदोलन में हाथ बंटाया। .... स्वामी जी को हम लोगों ने अपने जीवन के आदर्श के रूप में अपना लिया था। शुरू में तो हम लोगों ने स्वामी जी के महान देशभक्त, निर्भीक समाज सुधारक, वक्ता और प्रचारक के ही रूप में स्वीकार किया था। परन्तु उस समय हम यह नहीं समझ सके थे कि उनके सभी क्रिया कलापों के मूल रूप में आध्यात्मिकता ही नियत है।'

सी.राजगोपालाचारी के शब्दों में – 'कुछ ही दिन पूर्व के इतिहास पर नजर डालने पर ज्ञात होता है कि हम स्वामी विवेकानन्द के कितने ऋणी हैं। उन्होंने भारतवर्ष की यथार्थ महत्ता को हमारे समक्ष रखकर हमारी आँखें खोल दीं। उन्होंने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया। हम अंधकार में थे उन्होंने हमें राह दिखाई, वे भारत की राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता के जनक हैं।

गाँधी जी कहते हैं कि 'मैंने उनके द्वारा सृजित साहित्य का आद्योपान्त अध्ययन किया है और तत्पश्चात् अपने देश के प्रति मुझे जो प्रेम था उसमें हजार गुना बढ़ोत्तरी हो गई। नौजवानों! मैं तुमको आह्वान करता हूँ कि जहाँ स्वामी विवेकानन्द जिए और मृत्यु को प्राप्त हुए उस स्थान के कुछ प्रभाव को धारण किए बिना खाली मत चले जाना।

गाँधी जी के यह शब्द विवेकानन्द के राष्ट्र धर्म के प्रति अगाध प्रेम और स्वाधीनता की आंदोलन के प्रेरक पुरुष लेने की बात की पुष्टि के लिए पर्याप्त है।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी कहा है, '....... आंशिक या सम्पूर्ण रूप से भारत के आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने वालों ने स्वामी जी से प्रेरणा प्राप्त की भी। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्वामी विवेकानन्द ने भारत को सम्पूर्ण शक्ति से प्रभावित किया।

स्वामी जी के ही वाक्यों में, 'जो व्यक्ति अपनी माता को प्यार नहीं देता, वह दूसरों को भोजन और दूसरों की माता का पालन कैसे कर सकेगा? अर्थात् सन्यासी के लिए भी यही उचित है कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम का सृजन करें। जो अपने देश से प्यार नहीं करता वह वसुधा को कैसे अपनाएगा? पहले स्वदेश प्रेम, उस स्वदेश प्रेम का सहारा लेकर विश्व प्रेम।'

स्वामी जी का यह भाव ही उन्हें सन्यासी परम्परा के अन्य सन्यासियों से अलग करता है। वास्तव में वह राष्ट्रधर्म को ही सब कुछ मानने वालों में से थे। उनके विचारों का प्रभाव इतना अधिक था कि उसे सुनने वाला चाहे आम भारतीय हो या फिर विदेशी, वह आत्म मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। इतना ही नहीं उनके विचारों से प्रेरणा लेकर वह भारत के लिए उद्यम करने को प्रयत्न शील भी हो उठता था।

उन्हीं विचारों की वाहक मारग्रेट नोबल बनी जो दीक्षित होकर भगिनी निवेदिता कहलाई। स्वातंत्र्य समर में उन्होंने अपने आपको झोंक दिया। वह इंग्लैण्ड से थी इसके बावजूद अंग्रेजों के चंगुल से भारत को आजाद करने को तत्पर हुई।

युवकों से आह्वान

मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में, नयी पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्त्ता उसमें से आयेंगे। सिंहों की भाँति वे समस्त समस्या का हल निकालेंगे। मैंने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है और उसके लिये अपना समस्त जीवन दे दिया है। यदि मुझे सफलता नहीं मिलता, तो मेरे बाद कोई अधिक उपयुक्त व्यक्ति आयेगा और इस काम को सँभालेगा और मैं अपना संतोष प्रयत्न करने में ही मानूँगा।

युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधा वाले और उत्साहयुक्त ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं। तुम्हारा भविष्य निश्चित करने का यही समय है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण–शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, देर न करो। क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है।

जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर है और अनन्त है और मृत्यु अनिवार्य है। इसीलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान् जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए संसार में बार–बार आवर्भूत होते हैं, वे ही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दे एवं हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हों।

मैं फिर तुम्हें याद दिलाता हूँ, कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन तुम्हें कर्म का अधिकार है, फल का नहीं। चट्टान की तरह दृढ़ रहो। सत्य की हमेशा जीत होती है। श्रीरामकृष्ण की संतान निष्कपट एवं सत्यनिष्ठ रहे, शेष सब कुछ ठीक हो जायेगा। कदाचित् हम लोग उसका फल देखने के लिए जीवित न रहें, परन्तु जैसे इस समय हम जीवित हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि देर या सबेर इसका फल अवश्य प्रकट होगा। भारत को नव–विद्युत शक्ति की आवश्यकता है, जो जातीय धमनी में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर सके।

एक विचार लो, उसी विचार को अपना जीवन बनाओ–उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु, शरीर के सर्वांग उसी के विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है और इसी उपाय से बड़े–बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है। शेष सब तो बातें करने वाले मशीन मात्र हैं।

जीवन संग्राम में कूद पड़ो। भारत में कितनी चीजें पैदा होती हैं। विदेशी लोग उसी कच्चे माल के द्वारा सोना पैदा कर रहे हैं और तुम लोग भारवाही गधों की तरह उनका माल ढोते–ढोते मरे जा रहे हो। भारत में जो चीजें उत्पन्न होती हैं, विदेशी उन्हीं को ले जाकर अपनी बुद्धि से अनेक प्रकार की चीजें बनाकर सम्पत्तिशाली बन गये और तुम लोग अपनी बुद्धि संदूक में बंद करके घर का धन दूसरों को देकर 'हा अन्न'' हा अन्न' करके भटक रहे हो।

आगे बढ़ो! सैंकड़ों युगों के उद्यम से चरित्र का गठन होता है। निराश न होओ। सत्य के एक शब्द का भी लोप नहीं हो सकता। यदि दीर्घकाल तक कूड़े के नीचे भले ही दबा पड़ा रहे, परन्तु देर या सवेर वह प्रकट होगा ही। सत्य अनश्वर है, पुण्य अनश्वर है, पवित्रता अनश्वर है। मुझे सच्चे मनुष्य की आवश्यकता है, मुझे शंख–ढपोरे चेले नहीं चाहिए। मेरे बच्चे, दृढ़ रहो। कोई आकर तुम्हारी सहायता करेगा, इसका भरोसा न करो।

निष्क्रियता, हीन बुद्धि और कपट से देश छा गया है। क्या बुद्धिमान लोग यह देखकर स्थिर रह सकते हैं? रोना नहीं आता? मद्रास, बम्बई, पंजाब, बंगाल– कहीं भी तो जीवन शक्ति का चिन्ह दिखाई नहीं देता। तुम लोग सोच रहे हो – हम शिक्षित हैं। क्या खाक सीखा है? दूसरों की कुछ बातों को दूसरी भाषा में रटकर मस्तिष्क में भरकर, परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सोच रहे हो – हम शिक्षित हो गये। धिक् धिक् इसका नाम कहीं शिक्षा है। तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो क्लर्क बनना या एक दुष्ट वकील बनना और बहुत हुआ तो क्लर्की का ही दूसरा रूप एक डिप्टी मजिस्ट्रेट की नौकरी – यही न? इससे तुम्हें या देश को क्या लाभ हुआ? एक बार आँखें खोलकर देखो – सोना पैदा करने वाली भारत भूमि में अन्न के लिए हा–हाकार मचा है। तुम्हारी इस शिक्षा द्वारा उस न्यूनता की क्या पूर्ति हो सकेगी? कभी नहीं। पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से जमीन खोदने लग जा, अन्न की व्यवस्था कर – नौकरी करके नहीं – अपनी चेष्टा द्वारा पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से नित्य नवीन उपाय का आविष्कार करके। इसी अत्र–वस्त्र की व्यवस्था करने के लिए मैं लोगों को रजोगुण की बुद्धि करने का उपदेश देता हूँ। अत्र–वस्त्र की कमी और उसकी चिन्ता से देश बुरी अवस्था में चला जा रहा है। इसके लिए तुम लोग क्या कर रहे हो? फेंक दो अपने शास्त्र–वास्त्र गंगा जी में। देश के लोगों को पहले अन्न की व्यवस्था करने का उपाय सिखा दो। इसके बाद उन्हें भागवत का पाठ सुनाना। कर्मतत्परता के द्वारा इहलोक का अभाव दूर न होने तक कोई धर्म की कथा ध्यान से न सुनेगा। इसीलिए कहता हूँ, पहले अपने में अन्तर्निहित आत्मशक्ति को जागृत कर, फिर

देश के समस्त व्यक्तियों में जितना सम्भव हो, उस शक्ति के प्रति विश्वास जगाओ। पहले अन्न की व्यवस्था कर, बाद में उन्हें धर्म पाप्त करने की शिक्षा देना। अब अधिक बैठे रहने का समय नहीं – कब किसकी मृत्यु होगी, कौन कह सकता है?

कुछ महत्वपूर्ण लोगों के विचार

(1) अपने आध्यात्मिक यात्रा के आरम्भ में ही श्रीरामकृष्णदेव सर्वधर्म–समन्वय–स्वरूप थे। ... यदि उनका दृष्टिकोण व्यापक नहीं होता तो उन्होंने अल्लाह का नाम नहीं जपा होता तथा मुस्लिम भोजन नहीं किया होता। ईशु का चित्र उनके कमरे के दीवार पर चैतन्यदेव एवं नित्यानन्द के चित्रों के साथ टंगा रहता था।

– गिरीशचन्द्र सेन

(2) स्वामीजी एक संग्रामी आचार्य थे।... वस्तुतः विवेकानन्द की रचनाएत्र समग्र राष्ट्रीय चेतना एवं बंगाल के विपल्वी आन्दोलन के लिए प्रेरणा–स्रोत थी। महाभारत युग के बाद हिन्दूधर्म को प्रचण्ड गतिशील धारणाओं को विवेकानन्द के समान और किसी ने नहीं उपस्थित किया।

– राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर

(3) स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दूधर्म को बचाया और इस प्रकार भरत की रक्षा की। वे न होते, तो हम अपना धर्म गँवा बैठते और आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव हम सभी बातों के लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।

– चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

(4) स्वामी विवेकानन्द ने अपने समूचे जीवन को समग्र राष्ट्र एवं मानवता के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया था।... आधुनिक भारत उन्हीं की सृष्टि है।

– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

(5) श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे सम्मुख न केवल स्वयं उन्हीं के विचारों को प्रगट करते हैं, वरन् वे करोड़ों मानवों की आशा और विश्वास के भी प्रतीक हैं, जिस पर अनतिदूर भविष्य में हम उस एक विराट मन्दिर के निर्माण की आशा कर सकते हैं जहाँ हिन्दू और इतरेतर धर्मावलम्बी गण उसी एक परमात्मा की उपासना के लिए एक हृदय हो सम्मिलित हो सकेंगे – जो हम से दूर नहीं है।

– प्रो. मैक्स मूलर

(6) हम कहते हैं – देखो ! मातृभूमि की जाग्रत आत्मा में विवेकानन्द आज भी जीवित हैं। भारता माता की सन्तानों के हृदय में विवेकानन्द आज भी अधिष्ठित हैं।

– श्री अरविन्द

(7) भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन बहुत समय तक धूमायित होता रहा, जब तक कि विवेकानन्द के निःश्वास ने राख को उड़ाकर अग्नि को धधका न दिया।

– रोमाँ रोलाँ

(8) मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है। फलस्वरूप अपने देश के प्रति मेरा जो प्रेम था, वह हजार गुना बढ़ गया है।

– महात्मा गाँधी

(9) सचमुच में यह दावा किया जा सकता है कि विवेकानन्द से पूर्व किसी भी भारतीय ने अमरीकनों और अँगरेजों को इसके लिए बाध्य नहीं किया था कि उसके साथ व्यवहार समानता के स्तर पर हो – एक गुलाम मित्र के रूप में नहीं, एक कट्टर प्रतिपक्ष के रूप में नहीं, पर सच्चे शुभचिन्तक और मित्र के रूप में, जो सिखाने और सीखने, सहायता देने और माँगने के लिए समान रूप से तैयार हैं।

– ईशरवुड

(10) पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था। ... स्वामीजी ने जो कुछ लिखा या कहा, वह हमारे हित में है और वह आने वाले लम्बे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा। वे साधारण अर्थ में कोइ राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे। ...

– पण्डित जवाहरलाल नेहरू

(11) श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव ने सभी पथों को स्वीकारा, सभी विश्वासों एवं धारणाओं तथा प्रत्येक धर्म के भक्ति साधनों का अभ्यास किया। अन्ततः सभी उनके लिए सत्य हैं। वे एक मूर्तिपूजक हैं साथ ही निर्गुण, अनन्त सत्ता में समर्पित ध्यानकर्ता भी हैं, जिन्हें उन्होंने 'अखण्ड सच्चिदानन्द' कहकर पुकारा।

– प्रतापचन्द्र मजूमदार

(12) भक्ति के सूत्र में साकारवादी और निराकारवादी एक हो जाते हैं; हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एक हो जाते हैं; चारों वर्ण एक हो जाते है। सब धर्मावलम्बियों को तुम परम आत्मीय समझकर आलिंगन करते हो! तुम्हारी भक्ति है। तुम सिर्फ देखते हो -- अन्दर ईश्वर की भक्ति और प्रेम है या नहीं?

मुसलमान को भी यदि अल्लाह के ऊपर प्रेम हो तो वह भी तुम्हारा अपना आदमी होगा; ईसाई को यदि ईसा के ऊपर भक्ति हो, तो वह तुम्हारा परम आत्मीय होगा।

– श्री महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्री म''

(13) आज सौ वर्ष बाद भी, विश्व–इतिहास के मानदण्ड पर स्वामी विवेकानन्द के महत्व को आँकना बड़ा ही कठिन है।

– डॉ. ए. एल. बाशम

(14) यदि आप सचमुच मनुष्य की दिव्यता में विश्वास करते हैं, तो एक क्षण के लिए भी हमारे पास आयी उस महान् परम्परा को स्वीकार करने में आप न हिचकें, जिसके स्वामी विवेकानन्द महानतम व्याख्याता थे।

– डॉ. एस. राधाकृष्णन्

(15) स्वामी विवेकानन्द! क्या ही नाम ! वे उनमें से थे, जिन्होंने मुझे बहुत ही प्रेरणा दी, शक्तिशाली बनने के लिए प्रेरणा दी, ईश्वर का सेवक होने की प्रेरणा दी, अपने देश का सेवक होने की प्रेरणा दी, दरिद्र का सेवक होने की प्रेरणा दी, मानवजाति का सेवक होने की प्रेरणा दी।

– डॉ. अहमद सुकार्णो

(16) यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ सकारात्मक या भावात्मक है, नकारात्मक या अभावात्मक कुछ भी नहीं।

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(17) एक नाजुक परिस्थिति में जातीय चेतना को संग्रहीत और वाणी प्रदान करने वाले इस व्यक्ति (स्वामी विवेकानन्द) के आविर्भाव से बढ़कर कोई दूसरा महत्तर प्रमाण इस बात की पुष्टि के लिए नहीं दिया जा सकता था कि सनातन धर्म नित्य सजीव है, सप्राण है और भारत आज भी उतना ही महान् है जितना वह अतीत में था।

– भगिनी निवेदिता

(18) 19वीं शताब्दी को आधिभौतिक शास्त्रों के उत्कर्ष का उच्च स्थान

माना गया है। इस प्रकार की शताब्दी के उत्तरार्ध में, हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष में प्रचलित आध्यात्मिक शास्त्रों को पश्चिमी राष्ट्रों के विद्वानों को समझाकर उनसे इन शास्त्रों की अपूर्वता के सम्बनध में मान्यता प्राप्त कराना और जिस राष्ट्र में इस प्रकार के शास्त्र ग्रथित हुए हैं वहाँ के निवासियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना यह कोई छोटा–मोटा काम नहीं है।

– लोकमान्य तिलक

(19) स्वामी विवेकानन्द ने पहली बार भारत को विश्व के नक्शे में रखा. .. ।

– मोरारजी आर. देसाई

(20) जिसने भी उनका (स्वामी विवेकानन्द) व्याख्यान सुना – चाहे वह अंग्रेज हो, ईसाई हो या मुस्लिम, आर्य समाजी हो या ब्रह्मसमाजी – सबके लिए वह आँख खोलने वाला साबित हुआ।

– स्वामी रामतीर्थ

(21) ... स्वामी जी आज हम लोगों के बीच नहीं हैं किन्तु उन्होंने जिस आध्यात्मिक आलोक को हम लोगों के लिए प्रज्जवलित किया है वह चिरकाल तक जगत् को ज्योति प्रदान करता रहेगा।

– प्रेमचन्द

(22) दिग्गज आत्मा थे स्वामी विवेकानन्द! सर्वोपरि, वे चरित्र के गठनकर्ता थे, निःस्वार्थ और दृढ़ इच्छा–शक्ति सम्पन्न स्त्री–पुरुषों के गठनकर्ता थे।

– प्रो. डॉ. जे.एम.जी. बेल

(23) श्रीरामकृष्ण तीस कोटि भारतीयों के उस अखण्ड आध्यात्मिक जीवन के पूर्णप्रकाश–स्वरूप थे, जिसकी पावनधारा विगत दो सहस्र वर्षों से सतत् प्रवाहित होती आ रही है। इतना ही नहीं उनके जीवन संगीत से संसार के सहस्रों धर्मग्रन्थों एवं उपपन्थों के विभिन्न, परस्पर विरोधी दिखने वाले स्वरों में समरसता लाने वाली मंजुल ध्वनि निकली है।

– रोमाँ रोलाँ

(24) जब मैं अपने छात्र–जीवन की ओर पीछे लौटकर देखता हूँ, तो मुझे स्पष्ट स्मरण आता कि इस महान् संन्यासी की कुछ रचनाओं का पठन मुझमें कैसे बिजली तड़का देता था।... क्योंकि मैंने उनमें एक ऐसे सन्त का दर्शन किया, जिसने धर्म का अपना कोई संकीर्ण खेमा नहीं बनाया।

– डॉ. जाकिर हुसैन

(25) सांस्कृतिक रूप से भारत ने चीन पर 2000 वर्षों से भी अधिक समय तक अपना प्रभुत्व बनाए रखा। वह भी चीन में बिना एक भी सैनिक भेजे।

– हूंशिह (अमेरिका में चीन के पूर्व राजदूत)

स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में...

• जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्ष का काम करना पड़ेगा। वह जिस युग में जन्मा है उससे उसे बहुत आगे जाना पड़ेगा, किन्तु साधारण लोग किसी तरह रेंगते–रेंगते ही आगे बढ़ सकते हैं। जो महापुरुष प्रचार–कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, वे उन महापुरुषों की तुलना में अपेक्षाकृत अपूर्ण हैं जो मौन रहकर पवित्र जीवनयापन करते हैं और श्रेष्ठ विचारों का चिन्तन करते हुए जगत् की सहायता करते हैं। इन सभी महापुरुषों में एक के बाद दूसरे का आविर्भाव होता है – अंत में उनकी शक्ति का चरम फलस्वरूप ऐसा कोई शक्तिसम्पन्न पुरुष आवभूर्त होता है जो जगत् को शिक्षा प्रदान करता है।

• मन का विकास करो और उसका संयम करो, उसके बाद जहाँ इच्छा हो, वहाँ इसका प्रयोग करो – उससे अति शीघ्र फल प्राप्ति होगी। यह है यथार्थ आत्मोन्नति का उपाय। एकाग्रता सीखो और जिस ओर इच्छा हो, उसका प्रयोग करो। ऐसा करने पर तुम्हें कुछ खोना नहीं पड़ेगा। जो समस्त को प्राप्त करता है, वह अंश को भी प्राप्त कर सकता है।

• पहले स्वयं संपूर्ण मुक्तावस्था प्राप्त कर लो, उसके बाद इच्छा करने पर फिर अपने को सीमाबद्ध कर सकते हो। प्रत्येक कार्य में अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करो।

• श्रेयांसि बहुविघ्नानि अच्छे कर्मों में कितने ही विघ्न आते हैं। ... प्रलय मचाना ही होगा, इससे कम में किसी तरह नहीं चल सकता। कुछ परवाह नहीं। दुनिया भर में प्रलय मच जायेगा, वाह! गुरु की फतह! अरे भाई श्रेयांसि बहुविघ्नानि, उन्हीं विघ्नों की रेल पेल में आदमी तैयार होता है। मिशनरी फिशनरी का काम थोड़े ही है जो यह धक्का सम्हाले! ... बड़े–बड़े बह गये, अब

गडरिये का काम है जो थाह ले? यह सब नहीं चलने का भैया, कोई चिन्ता न करना। सभी कामों में एक दल शत्रुता ठानता है; अपना काम करते जाओ किसी की बात का जवाब देने से क्या काम? सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येनैव पन्था विततो देवयानः (सत्य की ही विजय होती है, मिथ्या की नहीं; सत्य के ही बल से देवयानमार्ग की गति मिलती है।) ... धीरे–धीरे सब होगा।

● हर काम को तीन अवस्थाओं में से गुजरना होता है – उपहास, विरोध और स्वीकृति। जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है, लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं; परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान् में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए, तब ये सब लुप्त हो जायेंगे।

● यदि कोई भंगी हमारे पास भंगी के रूप में आता है, तो छुतही बिमारी की तरह हम उसके स्पर्श से दूर भागते हैं। परन्तु जब उसके सीर पर एक कटोरा पानी डालकर कोई पादरी प्रार्थना के रूप में कुछ गुनगुना देता है और जब उसे पहनने को एक कोट मिल जाता है ... वह कितना ही फटा–पुराना क्यों न हो ... तब चाहे वह किसी कट्टर से कट्टर हिन्दू के कमरे के भीतर पहुँच जाय, उसके लिए कहीं रोक–टोक नहीं, ऐसा कोई नहीं, जो उससे सप्रेम हाथ मिलाकर बैठने के लिए उसे कुर्सी न दे। इससे अधिक विडम्बना की बात क्या हो सकती है? आइए, देखिए तो सही, दक्षिण भारत में पादरी लोग क्या गजब कर रहे हैं। ये लोग नीच जाति के लोगों को लाखों की संख्या में ईसाई बना रहे हैं। ... वहाँ लगभग चौथाई जनसंख्या ईसाई हो गयी है। मैं उन बेचारों को क्यों दोष दूँ? हे भगवान ! कब एक मनुष्य दूसरे से भाईचारे का बर्ताव करना सीखेगा।

● प्रायः देखने में आता है कि अच्छे से अच्छे लोगों पर कष्ट और कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं। इसका समाधान न भी हो सके, फिर भी मुझे जीवन में ऐसा अनुभव हुआ है कि जगत में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो मूल रूप में भली न हो। ऊपरी लहरें चाहे जैसी हों, परन्तु वस्तु मात्र के अन्तरकाल में प्रेम एवं कल्याण का अनन्त भण्डार है। जब तक हम उस अन्तराल तक नहीं पहुँचते, तभी तक हमें कष्ट मिलता है। एक बार उस शान्ति–मण्डल में प्रवेश करने पर फिर चाहे आँधी और तूफान के जितने तुमुल झकोरे आयें, वह मकान, जो सदियों की पुरानी चट्टान पर बना है, हिल नहीं सकता।

● नीतिपरायण तथा साहसी बनो, अन्तःकरण पूर्णतया शुद्ध रहना चाहिए। पूर्ण नीतिपरायण तथा साहसी बनो ... प्रणों के लिए कभी न डरो। कायर

लोग ही पापाचरण करते हैं, वीर पुरुष कभी भी पापानुष्ठान नहीं करते ... यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते। प्राणिमात्र से प्रेम करने का प्रयास करो। बच्चों, तुम्हारे लिए नीतिपरायणता तथा साहस को छोड़कर और कोई दूसरा धर्म नहीं। इसके सिवाय और कोई धार्मिक मत–मतान्तर तुम्हारे लिए नहीं है। कायरता, पाप, असदाचरण तथा दुर्बलता तुममें एकदम नहीं रहना चाहिए, बाकी आवश्यकीय वस्तुएँ अपने आप आकर उपस्थित होंगी।

• क्या संस्कृत पढ़ रहे हो? कितनी प्रगति हुई है? आशा है कि प्रथम भाग तो अवश्य ही समाप्त कर चुके होंगे। विशेष परिश्रम के साथ संस्कृत सीखो।

• बालकों, दृढ़ बने रहो, मेरी सन्तानों में से कोई भी कायर न बने। तुम लोगों में जो सबसे अधिक साहसी है – सदा उसी का साथ करो। बिना विघ्न–बाधाओं के क्या कभी कोई महान कार्य हो सकता है? समय, धैर्य तथ अदम्य इच्छा–शक्ति से ही कार्य हुआ करता है। मैं तुम लोगों को ऐसी बहुत सी बातें बतलाता, जिससे तुम्हारे हृदय उछल पड़ते, किन्तु मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं तो लोहे के सदृश दृढ़ इच्छा–शक्ति सम्पन्न हृदय चाहता हूँ, जो कभी कम्पित न हो। दृढ़ता के साथ लगे रहो, प्रभु तुम्हें आशीर्वाद दे। सदा शुभकामनाओं के साथ तुम्हारा विवेकानन्द।

• किसी को उसकी योजनाओं में हतोत्साह नहीं करना चाहिए। आलोचना की प्रवृत्ति का पूर्णतः परित्याग कर दो। जब तक वह सही मार्ग पर अग्रेसर हो रहे हैं; तब तक उनके कार्य में सहायता करो, और जब कभी तुमको उनके कार्य में कोई गलती नजर आये, तो नम्रतापूर्वक गलती के प्रति उनको सजग कर दो। एक दूसरे की आलोचना ही सब दोषों की जड़ है। किसी भी संगठन को विनष्ट करने में इसका बहुत बड़ा हाथ है।

• जो पवित्र तथा साहसी है, वही जगत में सब कुछ कर सकता है। माया–मोह से प्रभु सदा तुम्हारी रक्षा करें। मैं तुम्हारे साथ काम करने के लिए सदैव प्रस्तुत हूँ एवं हम लोग यदि स्वयं अपने मित्र रहें तो प्रभु भी हमारे लिए सैंकड़ों मित्र भेजेंगे, आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः।

• पूर्णतः निःस्वार्थ रहो, स्थिर रहो और काम करो। एक बात और है– सबके सेवक बनो और दूसरों पर शासन करने का तनिक भी यत्न न करो, क्योंकि इससे ईर्ष्या उत्पन्न होगी और इससे हर चीज बर्बाद हो जायेगी। आगे बढ़ो तुमने बहुत अच्छा काम किया है। हम अपने भीतर से ही सहायता लेंगे अन्य सहायता के लिए हम प्रतीक्षा नहीं करते। मेरे बच्चे, आत्मविश्वास रखो, सच्चे

और सहनशील बनो।

● मेरी केवल यह इच्छा है कि प्रतिवर्ष यथेष्ठ संख्या में हमारे नवयुवकों को चीन जापान में आना चाहिए। जापानी लोगों के लिए आज भारतवर्ष उच्च और श्रेष्ठ वस्तुओं का स्वप्नराज्य है और तुम लोग क्या कर रहे हो? ... जीवन भर केवल बेकार बातें किया करते हो, व्यर्थ बकवाद करने वालो, तुम लोग क्या हो? आओ, इन लोगों को देखो और उसके बाद जाकर लज्जा से मुँह छिपा लो। सठियाई बुद्धि वालों, तुम्हारी तो देश से बाहर निकलते ही जाति चली जायेगी। अपनी खोपड़ी में वर्षो के अन्धविश्वास का निरन्तर वृद्धिगत कूड़ा–कर्कट भरे बैठे, सैंकड़ों वर्षो से केवल आहार की छुआछूत के विवाद में ही अपनी सारी शक्ति नष्ट करने वालों, युगों के सामाजिक अत्याचार से अपनी सारी मानवता का गला घोटले वालों, भला बताओ तो सही, तुम कौन हो? और तुम इस समय कर ही क्या रहे हो? ... किताबें हाथ में लिए तुम केवल समुद्र के किनारे फिर रहे हो। तीस रुपये की मुंशी गीरी के लिए अथवा बहुत हुआ, तो एक वकील बनने के लिए जी जान से तड़प रहे हो...। यही तो भारतवर्ष के नवयुवकों की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा है। तिस पर इन विद्यार्थियों के भी झुण्ड के झुण्ड बच्चे पैदा हो जाते हैं, जो भूख से तड़पते हुए उन्हें घेरकर 'रोटी दो, रोटी दो' चिल्लाते रहते हैं। क्या समुद्र में इतना पानी भी न रहा कि तुम उसमें विश्वविद्यालय के डिप्लोमा, गाउन और पुस्तकों के समेत डूब मरो? आओ, मनुष्य बनो। उन पाखण्डी पुरोहितों को, जो सदैव उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं, ठोकरें मारकर निकाल दो, क्योंकि उनका सुधार कभी न होगा, उनके हृदय कभी विशाल न होंगे। उनकी उत्पत्ति तो सैंकड़ों वर्षो के अन्धविश्वासों और अत्याचारों के फलस्वरूप हुई है। पहले पुरोहिती पाखड को जड़–मूल से निकाल फेंको। आओ, मनुष्य बनो। कूपमंडूकता छोड़ो और बाहर दृष्टि डालो। देखो, अन्य देश किस तरह आगे बढ़ रहे हैं। क्या तुम्हें मनुष्य से प्रेम है? यदि 'हाँ' तो आओ, हम लोग उच्चता और उन्नति के मार्ग में प्रयत्नशील हों। पीछे मुड़कर मत देखो, अत्यन्त निकट और प्रिय सम्बन्धी रोते हों, तो रोने दो, पीछे देखो ही मत। केवल आगे बढ़ते जाओ। भारतमाता कम से कम एक हजार युवकों का बलिदान चाहती है ... मस्तिक वाले युवकों का, पशुओं का नहीं। परमात्मा ने तुम्हारी इस निश्चेष्ट सभ्यता को तोड़ने के लिए ही अंग्रेजी राज्य को भारत में भेजा है ...।

● वीरता से आगे बढ़ो। एक दिन या एक साल में सिद्धि की आशा न रखो। उच्चतम आदर्श पर दृढ़ रहो। स्थिर रहो। स्वार्थपरता और ईर्ष्या से बचो। आज्ञा–पालन करो। सत्य, मनुष्य ... जाति और अपने देश के पक्ष पर सदा के

लिए अटल रहो और तुम संसार को हिला दोगे। याद रखो – व्यक्ति और उसका जीवन ही शक्ति का स्रोत है, इसके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं।

• मैं चाहता हूँ कि मेरे सब बच्चे, मैं जितना उन्नत बन सकता था, उससे सौगुना उन्नत बनें। तुम लोगों में से प्रत्येक को महान शक्तिशाली बनना होगा – मैं कहता हूँ, अवश्य बनना होगा। आज्ञा–पालन, ध्येय के प्रति अनुराग तथा ध्येय को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सदा प्रस्तुत रहना – इन तीनों के रहने पर कोई भी तुम्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता।

• मन और मुँह को एक करके भावों को जीवन में कार्यान्वित क़रना होगा। इसी को श्री रामकृष्ण कहा करते थे, 'भाव के घर में किसी प्रकार की चोरी न होने पाये।' सब विषयों में व्यवहारिक बनना होगा। लोगों या समाज की बातों पर ध्यान न देकर वे एकाग्र मन से अपना कार्य करते रहेंगे क्या तूने नहीं सुना, कबीरदास के दोहे में है – 'हाथी चले बाजार में, कुत्ता भोंके हजार साधुन को दुर्भाव नहिं, जो निन्दे संसार' ऐसे ही चलना है। दुनिया के लोगों की बातों पर ध्यान नहीं देना होगा। उनकी भली बुरी बातों को सुनने से जीवन भर कोई किसी प्रकार का महत् कार्य नहीं कर सकता।

• अन्त में प्रेम की ही विजय होती है। हैरान होने से काम नहीं चलेगा – ठहरो – धैर्य धारण करने पर सफलता अवश्म्भावी है – तुमसे कहता हूँ देखना – कोई बाहरी अनुष्ठानपद्धति आवश्य न हो – बहुत्व में एकत्व सार्वजनिन भाव में किसी तरह की बाधा न हो। यदि आवश्यक हो तो 'सार्वजननीनता' के भाव की रक्षा के लिए सब कुछ छोड़ना होगा। मैं मरूँ चाहें बचूँ, देश जाऊँ या न जाऊँ, तुम लोग अच्छी तरह याद रखना कि सार्वजननीता – हम लोग केवल इसी भाव का प्रचार नहीं करते कि 'दूसरों के धर्म का द्वेष न करना'; नहीं, हम सब लोग सब धर्मो को सत्य समझते हैं और उनका ग्रहण भी पूर्ण रूप से करते हैं। हम इसका प्रचार भी करते हैं और इसे कार्य में परिणत कर दिखाते हैं सावधान रहना, दूसरे के अत्यन्त छोटे अधिकार में भी हस्तक्षेप न करना – इसी भँवर में बड़े–बडे जहाज डूब जाते हैं पूरी भक्ति, परन्तु कट्टरता छोड़कर, दिखानी होगी, याद रखना उनकी कृपा से सब ठीक हो जायेगा।

• एक महान रहस्य का मैंने पता लगा लिया है ... वह यह है कि केवल धर्म की बातें करने वालों से मुझे कुछ भय नहीं है और जो सत्यद्रष्ट महात्मा हैं, वे कभी किसी से बैर नहीं करते। वाचालों को वाचाल होने दो! वे इससे अधिक और कुछ नहीं जानते! उन्हें नाम, यश, धन, स्त्री से सन्तोष प्राप्त करने दो और हम

धर्मोपलब्धि, ब्रह्मलाभ एवं ब्रह्म होने के लिए ही दृढ़व्रत होंगे। हम आमरण एवं जन्म–जन्मान्त में सत्य का ही अनुसरण करेंगे। दूसरों के कहने पर हम तनिक भी ध्यान न दें और यदि आजन्म यत्न के बाद एक, केवल एक ही आत्मा संसार के बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो सके तो हमने अपना काम कर दिया।

• वत्स, धीरज रखो, काम तुम्हारी आशा से बहुत ज्यादा बढ़ जायेगा। हर एक काम में सफलता प्राप्त करने से पहले सैंकड़ों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो उद्यम करते रहेंगे, वे आज या कल सफलता को देखेंगे। परिश्रम करना है वत्स, कठिन परिश्रम्! काम कांचन के इस चक्कर में अपने आपको स्थिर रखना और अपने आदर्शों पर जमे रहना, जब तक कि आत्मज्ञान और पूर्ण त्याग के साँचे में शिष्यस न ढल जाय निश्चय ही कठिन काम है। जो प्रतिक्षा करता है उसे बस चीजें मिलती हैं। अनन्त काल तक तुम भाग्यवान बने रहो।

• मेरी दृढ़ धारणा है कि तुममें अन्धविश्वास नहीं है। तुममें वह शक्ति विद्यमान है, जो संसार को हिला सकती है, धीरे–धीरे और भी अन्य लोग आयेंगे। 'साहसी' शब्द आर उससे अधिक 'साहसी' कर्मो की हमें आवश्यकता है। उठो! उठो! संसार दुःख से जल रहा है। क्या तुम सो सकते हो? हम बार–बार पुकारें, जब तक सोते हुए देवता न जाग उठें, जब तक अन्तर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दें। जीवन में और क्या है? इससे महान कर्म क्या है?

• जो सत्य है, उसे साहसपूर्वक निर्भीक होकर लोगों से कहो उससे किसी को कष्ट होता है या नहीं, इस ओर ध्यान मत दो। दुर्बलता को कभी प्रश्रय मत दो। सत्य की ज्योति 'बुद्धिमान' मनुष्यों के लिए यदि अत्यधिक मात्रा में प्रखर प्रतीत होती है, और उन्हें बहा ले जाती है, तो ले जाने दो– वे जितना शीघ्र बह जाएँ उतना अच्छा ही है।

• तुम अपनी अंतःस्थ आत्मा को छोड़ किसी और के सामने सिर मत झुकाओ। जब तक तुम यह अनुभव नहीं करते कि तुम स्वयं देवां के देव हो, तब तक तुम मुक्त नहीं हो सकते।

• ईश्वर ही ईश्वर की उपलब्धि कर सकता है। सभी जीवंत ईश्वर हैं – इस भाव से सब को देखो। मनुष्य का अध्ययन करो, मनुष्य ही जीवन्त काव्य है। जगत में जितने ईसा या बुद्ध हुए हैं, सभी हमारी ज्योति से ज्योतिष्मान हैं। इस ज्योति को छोड़ देने पर ये सब हमारे लिए और अधिक जीवित नहीं रह सकेंगे, मर जाएंगे। तुम अपनी आत्मा के ऊपर स्थिर रहो।

• ज्ञान स्वयमेव वर्तमान है, मनुष्य केवल उसका आविष्कार करता है।

• मानव–देह ही सर्वश्रेष्ठ देह है एवं मनुष्य ही सर्वोच्च प्राणी है, क्योंकि इस मानव–देह तथा इस जन्म में ही हम इस सापेकि जगत् से संपूर्णतया बाहर हो सकते हैं–निश्चय ही मुक्ति की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं और यह मुक्ति ही हमारा चरम लक्ष्य है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हो चुकने पर धर्मसंघ में बना रहना अवांछनीय है। उससे बाहर निकलकर स्वाधीनता की मुक्त वायु में जीवन व्यतीत करो।

• मुक्ति–लाभ के अतिरिक्त और कौन सी उच्चावस्था का लाभ यिका जा सकता है? देवदूत कभी कोई बुरे कार्य नहीं करते, इसलिए उन्हें कभी दंड भी प्राप्त नहीं होता, अतएव वे मुक्त भी नहीं हो सकते। सांसारिक धक्का ही हमें जगा देता है, वही इस जगत्स्वप्न को भंग करने में सहायता पहुँचाता है। इस प्रकार के लगातार आघात ही इस संसार से छुटकारा पाने की अर्थात् मुक्ति–लाभ करने की हमारी आकांक्षा को जागृत करते हैं।

• हमारी नैतिक प्रकृति जितनी उन्नत होती है, उतना ही उच्च हमारा प्रत्यक्ष अनुभव होता है और उतनी ही हमाररी इच्छा शक्ति अधिक बलवती होती है।

• मन का विकास करो और उसका संयम करो, उसके बाद जहाँ इच्छा हो, वहाँ इसका प्रयोग करो– उससे अति शीघ्र फल प्राप्ति होगी। यह है यथार्थ आत्मोन्नति का उपाय। एकाग्रता सीखो और जिस ओर इच्छा हो, उसका प्रयोग करो। ऐसा करने पर तुम्हें कुछ खोना नहीं पड़ेगा। जो समस्त को प्राप्त करता है, वह अंश को भी प्राप्त कर सकता है।

• पहले स्वयं संपूर्ण मुक्तावस्था प्राप्त कर लो, उसके बाद इच्छा करने पर फिर अपने को सीमाबद्ध कर सकते हो। प्रत्येक कार्य में अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करो।

• सभी मरेंगे– साधु या असाधु, धनी या दरिद्र – सभी मरेंगे। चिर काल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और संपूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है। चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढ़ता और चरित्र का बल, जिससे मनुष्य आजीवन दृढ़व्रत बन सके।

• संन्यास का अर्थ है, मृत्यु के प्रति प्रेम। सांसारिक लोग जीवन से प्रेम

करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने को मृत्यु है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम आत्महत्या कर लें। आत्महत्या करने वालों को तो कभी मृत्यु प्यारी नहीं होती है। संन्यासी का धर्म है संमस्त संसार के हित के लिए निरंतर आत्मत्याग करते हुए धीरे–धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाना।

● हे सखे, तुम क्यों रो रहे हो? सब शक्ति तो तुम्हीं में हैं। हे भगवन्, अपना ऐश्वर्यमय स्वरूप को विकसित करो। ये तीनों लोक तुम्हारे पैरों के नीचे हैं। जड़ की कोई शक्ति नहीं प्रबल शक्ति आत्मा की हैं। हे विद्वन! डरो मत्:, तुम्हारा नाश नही हैं, संसार–सागर से पार उतरने का उपाय है। जिस पथ के अवलम्बन से यती लोग संसार–सागर के पार उतरे हैं, वही श्रेष्ठ पथ मैं तुम्हें दिखाता हूँ।

● बड़े–बड़े दिग्गज बह जायेंगे। छोटे–छोटे की तो बात ही क्या है। तुम लोग कमर कसकर कार्य में जुट जाओ, हुंकार मात्र से हम दुनिया को पलट देंगे। अभी तो केवल मात्र प्रारम्भ ही है। किसी के साथ विवाद न कर हिल–मिलकर अग्रसर हो ... यह दुनिया भयानक है, किसी पर विश्वास नहीं है। डरने का कोई कारण नहीं है, माँ मेरे साथ हैं .. इस बार ऐसे कार्य होंगे कि तुम चकित हो जाओगे। भय किस बात का? किसका भय? वज्र जैसा हृदय बनाकर कार्य मे जुट जाओ।

● लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपालु हो या न हो, तुम्हारा देहान्त आज हो या एक युग में, तुम न्यायपथ से कभी भ्रष्ट न हो।

● धीरज रखो और मृत्युपर्यन्त विश्वास पात्र रहो। आपस में न लड़ो! रुपये के व्यवहार में शुद्ध भाव रखो। हम अभी महान कार्य करेंगे। जब तक तुममें ईमानदारी, भक्ति और विश्वास है, तब तक प्रत्येक कार्य में तुम्हें सफलता मिलेगी।

● भाग्य बहादुर और कर्मठ व्यक्ति का ही साथ देता है। पीछे मुड़कर मत देखो आगे, अपार शक्ति, अपरिमित उत्साह, अमित साहस और निस्सीम धैर्य की आवश्यकता है और तभी महत कार्य निष्पन्न किये जा सकते हैं। हमें पूरे विश्व को उद्दीप्त करना है।

● जब तक जीना, तब तक सीखना। अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है।



एक ओर नवीन भारत कहता है कि
"पाश्चात्य जातियाँ जो कुछ कर रही हैं, वही अच्छा है।
अच्छा न होता तो वे ऐसी बलवान हुई कैसे ?"
दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है कि
"बिजली की चमक तो खूब होती है, पर क्षणिक होती
है। बालको! तुम्हारी आँखें चौंधिया रही हैं, सावधान!"
– स्वामी विवेकानन्द



स्वामी विवेकानन्द जयंती के 150 वर्ष को मनाने हेतु विवेकानंद सार्ध शती समारोह समिति द्वारा आयोजित सभी उपक्रमों में अभाविप एक अंग के नाते आयोजन एवं पूर्व तैयारी में पूर्णत: सहभागी होना चाहता है।

साथ अभाविप ने इस अवसर पर कुछ महत्वपूर्ण गतिविधियों की योजना बनाई है।

अभाविप की योजना

(1) **युवा दिवस – महाविद्यालयों में व्यापक कार्यक्रम**

12 जनवरी 2013 शैक्षणिक परिसरों में व्यापक स्तर पर कार्यक्रम की योजना

देशभर के – 15000 महाविद्यालय परिसरों में कार्यक्रम करने का लक्ष्य

[(+ 2), स्नातक (UG), स्नातकोत्तर (PG),
व्यावसायिक (Professional),

समयावधि – 15 से 25 जनवरी 2013

कार्यक्रम स्वरूप (न्यूनतम मापदण्ड) स्वामी विवेकानंद जी का चित्र, 30 – 35 मिनट विषय प्रस्तुति, बैनर, साहित्य वितरण, साहित्य बिक्री स्टॉल।

अन्य कार्यक्रम – PPT प्रतियोगिता, खुला प्रश्न मंच, खेलकूद, भाषण, विवेकानंद वेश भूषा जैसी प्रतियोगितायें, प्रतिभा सम्मान समारोह, पुष्पार्चन, प्रदर्शनी, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता कौन बनेगा विवेकानन्द प्रश्नोत्तरी तथा विवेकानन्द युवा महोत्सव आदि।

योजना – 12 जनवरी 2013 से पहले करणीय काम,

- नगर स्तर पर नवंबर में समिति बनाना।
- दिसंबर में महाविद्यालयश: छात्रों की समिति तय करें।

• + 2 व महाविद्यालय परिसरों की सूची (पते सहित) अक्टूबर तक जिला केन्द्रों पर बनाना।

• + 2 व महाविद्यालय प्राचार्य को पत्र भेजना (नवम्बर तक)।

• भाषण तैयारी हेतु कार्यकर्ता चयन व प्रशिक्षण।

(2) स्वामी विवेकानन्द संदेश यात्रा वर्ष 2013

• सितम्बर और दिसम्बर माह में होगी।

• प्रदर्शनी – साहित्य, (पत्रक / स्टीकर / फोल्डर / कैलेण्डर) – पुस्तक; फोटो, CD – वितरण एवं बिक्री हेतु।

• यात्रा के पूर्व प्रचार हेतु स्थानिक ध्वनियंत्र सहित छोटे वाहन का उपयोग करे।

• प्रचार एवं प्रसार हेतु मिडिया, दीवार लेखन, पत्रक, बैनर आदि का उपयोग करे।

कार्यक्रम रचना –

• महाविद्यालय, विद्यालय एवं छात्रावास के अतिरिक्त नगर के अन्य सार्वजनिक कार्यक्रमों का आयोजन करें जैसे बस स्थानक, बाजार।

(3) संगठनात्मक विस्तार हेतु – समारोह विस्तार – समय देकर सहभागी बने।

(क) समारोह विस्तारक वर्ष जून 2013 – जून 2014, एक वर्ष का पूरा समय देकर समारोह विस्तारक बने।

(ख) अल्पकालीन विस्तारक – विभिन्न कार्यक्रम / अभियानों के निमित्त 7 से 30 दिन का समय दे।

• 1 से 30 जनवरी के बीच, अन्यथा समारोह वर्ष में अपनी सुविधानुसार

(4) साहित्य बिक्री – एक माह अभियान –

• विचार यात्रा केवल भाषण से नहीं साहित्य से भी यह भाव लेकर विवेकानन्द विचार साहित्य बेचना

साहित्य बिक्री स्थान

• महाविद्यालय परिसर, छात्रावास, बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन, यात्रा / मेला, झोला पुस्तकालय बस्ती

● साहित्य बिक्री करने वाली टीम का प्रशिक्षण

(5) युवा प्रतिभाओं का अखिल भारतीय सम्मेलन

● दिसंबर 2013 में तीन दिवसीय सम्मेलन रहेगा।

(6) परिचर्चाएँ / संगोष्ठियाँ

● राष्ट्रीय परिचर्चा – 'स्वामी विवेकानंद एवं शिक्षा' इस विषय पर अखिल भारतीय परिचर्चा का आयोजन

● सभी विश्वविद्यालय परिसरों में स्वामी विवेकानन्द एवं शिक्षा विषय पर संगोष्ठियों का आयोजन

उक्त कार्यक्रमों के सफल आयोजन हेतु आपसे आपेक्षित सहयोग की आशाओं सहित !

(7) अन्य बिन्दु

● हर महाविद्यालय परिसर में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा, पुस्तकालय में विवेकानन्द जीवन चरित्र पुस्तक लगाने का आग्रह।

● विश्व विद्यालय में विवेकानन्द अध्ययन केंद्र स्थापित करने हेतु आग्रह एवं परिसर में स्वाध्याय मंडल, पुस्तक मेला रखना।

● स्वामी विवेकानन्द जी जिन स्थानों पर गये थे वहाँ यात्रा के या अन्य बड़े कार्यक्रम करना।

सामान्य छात्र की प्रेरणा जागृत करते हुए अपने कार्यकर्ताओं की कार्य करने की प्रेरणा बढ़े व उसका सामाजिक कार्य के लिए संकल्प दृढ़ हो।

सार्ध शती समारोह समिति द्वारा कार्यक्रम

- 12 जनवरी 2013 – शुभारंभ समारोह (शोभायात्रा, वाहन यात्रा)
- 11 सितंबर – भारत जागो दौड़ – युवा वर्ग (आयु 18 से 40)
- 15 नवम्बर से 15 दिसम्बर – (सेवा साधना) चलो गाँव की ओर सात दिन
- 12 जनवरी 2014 – मानव श्रृंखला



"हर काम को तीन अवस्थाओं में से गुजरना होता है - उपहास, विरोध और स्वीकृति। जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है, लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं; परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान् में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए, तब ये सब लुप्त हो जायेंगे।"

- स्वामी विवेकानन्द



अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्
5, नवीन मार्केट, छात्र शक्ति भवन, केसरबाग, लखनऊ